योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक पाक्षिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

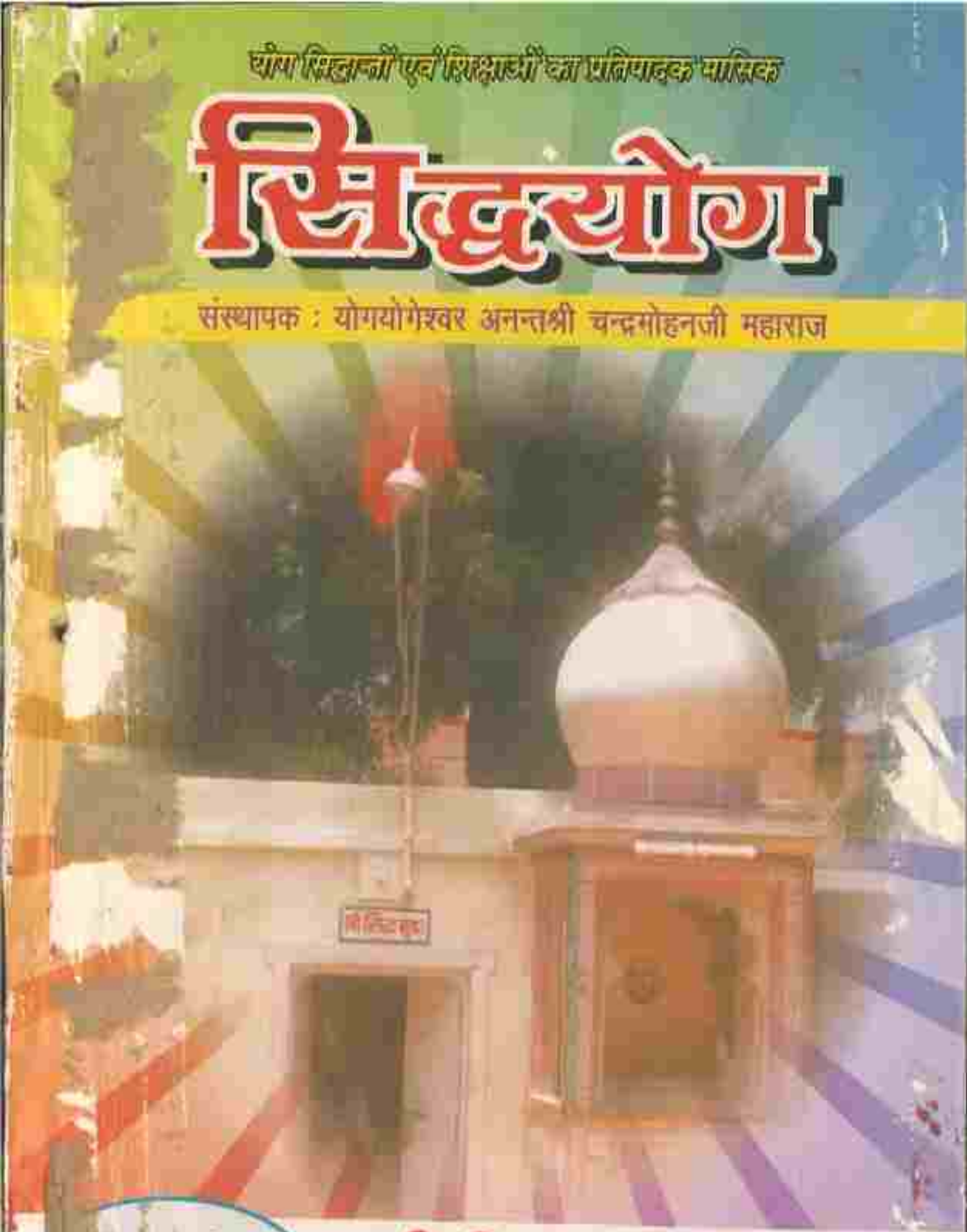

39 ~ अंक : 1
..., 2006

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

महाप्रभु श्री रामलालजी का सिद्धगुफा (सवांई) से
हिमालय के लिए आकाश गमन

पथभ्रष्ट युवती रामरती पर शक्तिपात करते हुए श्री प्रभुजी

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

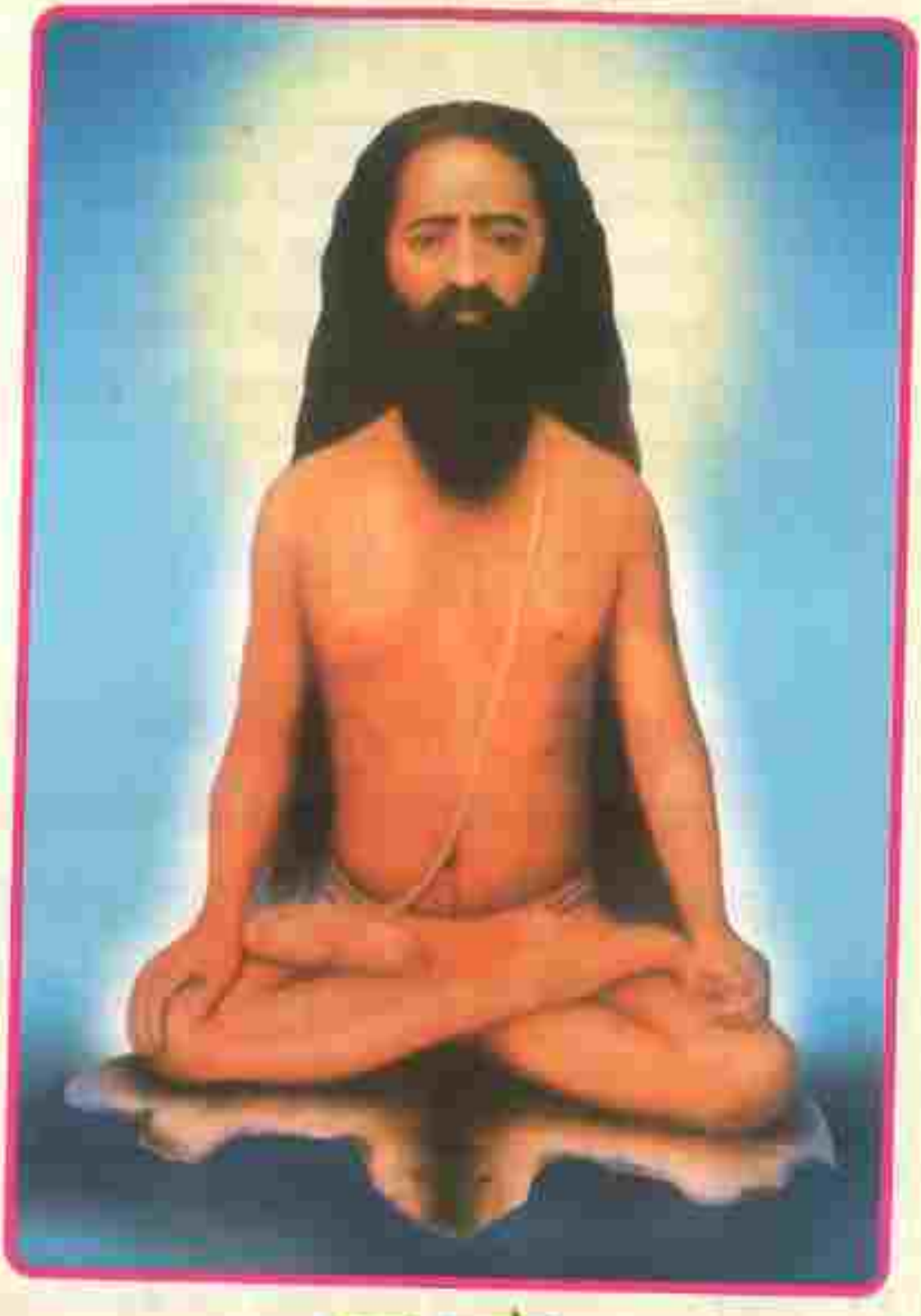

दादा गुरुदेव
योगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 39
अंक 1

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अप्रैल
2006

दृग्गोचरो दीनबन्धु

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं
यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले ।
यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः।।

भावार्थ

जिस परमात्मा से यह ब्रह्मा आदि रूप जगत प्रकट होता है और सम्पूर्ण जगत के कारणभूत जिन परमेश्वर में यह समस्त संसार स्थित है तथा अनन्त काल में यह समस्त जगत् जिनमें लीन हो जाता है, वे दीनबन्धु भगवान आज मेरे नेत्रों के समक्ष दर्शन दें।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 10
3. हिमालय के अमर महायोगी – श्री पूर्णचन्द्र पंत 14
4. वेदान्त और योग – डॉ. श्री महेन्द्रनाथ सरकार 19
5. जीवन यात्रा की परम साधना – श्री शिवानन्द 26
6. गुरुदेव के संस्मरण – श्री जगदीश राय बंसल 29
7. कवित्त – श्री भूपेन्द्र 'अंकुश' 33
8. योग में हस्त मुद्राओं का महत्व – डॉ. जे.पी. शर्मा 34
9. जपि जेई पिय संग भवानी – श्री कृष्ण कुमार पाण्डेय 38
10. चित्त, उसके प्रकार और चित्त प्रसादन – श्री वृष्टिकेतु सिंह पुंडीर 40
11. जय गुरुदेव – श्री दिनेश शर्मा 42
12. आश्रम समाचार 43
13. स्वरूप ज्ञान – श्री जनक कुलश्रेष्ठ 44
14. भाव प्रसून – सद्गुरुदेवार्थ – श्री मोती लाल 47
15. आध्यात्मिक दिव्य ज्योति के प्रदाता सद्गुरुदेव – कुमारी रचना शर्मा 48
16. योग का व्यापक र श – श्री वेदव्रत द्विवेदी 52
17. गुण देखने की वृत्ति – आचार्य श्री विनोबा 54
18. योग कर्मसु कौशलम् – डॉ. श्री गंगानाथ जी झा 58
19. हठयोग – आचार्य गोपीनाथजी 60
20. प्रभुजी के अनन्य कृपा पात्र .... श्री राजीव कुमार अग्र 62
21. कालजयी श्री प्रभुजी – श्री त्रिभुवन नाथ मिश्र 63
22. आय–व्यय का विवरण 64

एक प्रति	: रु. 10.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 110.00
द्विवार्षिक	: रु. 200.00
आजीवन	: रु. 800.00

वि.सं. 2063

नूतन वर्षाभिनंदन !

सिद्धयोग के पाठक समस्त
गुरुभाई–बहिनों को नववर्ष की
हार्दिक शुभकामनायें !
– सम्पादक

❑विशेष लेख

श्री प्रभुजी की करुणा कृपा एवं साधकों की उत्कृष्ट योगस्थितियाँ

योगयोगेश्वर अनन्तश्री वल्लभमोहन जी महाराज

मैं अपने पिछले व्याख्यान में तुम्हें अस्मितानुगत समाधि के विषय में समझा रहा था। मैंने तुम्हें बताया था कि अस्मितानुगत समाधि में 'अस्मि प्रत्यय' मैं हूँ यह ही ज्ञानरूप में रहता है। थोडी देर के लिये मानो एक योगी अपने का अखण्डमण्डलाकार तेज में ही व्याप्त देखता है उस समय उसके मन में एक ही वृत्ति 'अस्मि, अस्मि अस्मि' मैं हूँ मैं हूँ सब कुछ मैं ही हूँ शेष रहती है। इस वृत्ति को निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं। जो स्वयं खत्म होने वाली होती है जैसे ईंधन के बहुत बड़े ढेर को अग्नि जला देती है और उसको जला करके अग्नि अपने आप शान्त भी हो जाया करती है। अस्मि प्रत्यय भी अन्य सब वृत्तियों का नाश करके खुद भी समाप्त हो जाती है। उसके बाद ही योगी को निर्बीज समाधि की प्राप्ति होती है जिसमें कोई मायिक बीज नहीं रहता।

अस्मितानुगत समाधिजन्य अखण्ड मण्डलाकार प्रकाश में लीन उस योगी को यह ज्ञान नहीं रहता कि मैं अमुक व्यक्ति हूँ, अमुक मेरा गाँव है। इतने मेरे मित्र हैं। भगवान शिव मेरे आराध्य हैं ये सब बात भूल कर केवल मात्र अखण्डमण्डलाकार व्यापक सत्ता में अस्मि अस्मि रूप से यह सब कुछ हो रहा है वह मैं ही हूँ यही एकमात्र अनुभूति रहती है। मैंने तुम्हें कई बार समझाया है कि श्री प्रभु जी ने नेपाल हिमालय से आने के बाद हमें गहरे शास्त्रीय सिद्धान्त प्रत्यक्ष अनुभूतियों के साथ समझाये। उस समय के हमारे गुरु भाई–बहिन यद्यपि शास्त्रीय सिद्धान्तों को नहीं जानते थे। किन्तु सिद्धान्त प्रकट रूप में अनुभूत हो जाया करते थे। इसीलिये कहा गया है–

'गुरोस्तु मौनव्याख्यानम् शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः'

हिमालय के जो योगी हैं उनके शिष्यों को उनका उपदेश निर्माण चित्त के द्वारा हुआ करता है और वह निर्माण चित्त योगी अस्मितानुगत समाधि में ही बना सकता है। योग दर्शन में सूत्र आता है **'निर्माणचित्तान्यस्मितामात्राद्'** अस्मितानुगत में योगी निर्माण चित्तों को बना लेता है। अस्मितानुगत समाधि के सिद्ध होने पर एक तो चित्त निर्माण की ताकत आती है दूसरी ताकत है ऋतम्भरा प्रज्ञा की। ऋतम्भरा प्रज्ञा वाला योगी अनुमानित बात नहीं करता। उस ऋतम्भरा प्रज्ञा के लिये कहा जाता है यह ऋतम्भरा का ज्ञान श्रुत् अर्थात् पढ़ा हुआ एवं सुना हुआ तथा अनुमान से अलग प्रत्यक्ष ज्ञान वाला होता है। उसका अन्तःकरण इतना शुद्ध होता है कि जो ज्ञान उसको होता है वह सत्य होता है। **'मनः**

सत्येन शुद्धयति' - सत्य से मन शुद्ध होता है। विद्या व तप से अन्त करण शुद्ध होता है जब शुद्धि की पराकाष्ठा आ जाती है तो योगी को एक ही ज्ञान शेष रहता है **'अहमेवास्मि'** मैं ही सब में हूं **'मत्तः परतरं न किञ्चिदस्ति धनञ्जय'** अर्जुन ! मेरे से आगे और कुछ भी नहीं है। इसी स्थिति को ही अस्मि प्रत्यय कहते हैं। मैंने अभी तुम्हें बताया था **'गुरोस्तु मौनम् व्याख्यानम् शिष्यास्तु छिन्न संशयाः'**। इस दीखती दुनिया के अन्दर मेरे दो बड़े गुरुभाई थे–ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी और मुलखराज जी महाराज। इन दोनों की व्यापक स्थिति बहुत ऊँची थी। मुलखराज जी महाराज को स्वयम सिद्धि में मूलाधार जगत सिद्ध था। वे जो कुछ काम कराया करते थे सिद्धि को आज्ञा देकर करते थे किन्तु गोपालानन्द जी का यह रास्ता नहीं था। मैंने तुम्हें यह कई बार बतलाया है कि शास्त्रों में दीक्षा के कई प्रकार बतलाये हैं योगी किसी को आँख से देखता है दृग्दीक्षा हो जाती है, किसी का स्पर्श करता है स्पर्श दीक्षा, किसी के प्रति संकल्प करता है संकल्प दीक्षा आदि आदि दीक्षा के प्रकार हैं। आनन्दकन्द श्रीप्रभुजी के चरणों में हमने यह खास बात देखी है कि विधि विधान पूर्वक दीक्षा बहुत थोड़े व्यक्तियों को ही दी, नहीं तो वैसे ही कुछ कह दिया दीक्षा हो गई। मिट्टी का ढेला दे दिया तो दीक्षा हो गई। मैंने अभी ब्र. गोपालानन्द जी का जिक्र किया था वे हल्द्वानी के रहने वाले थे वहाँ एक योगी थे जिनका शरीर प्राणायाम के बल पर ऊपर उठ जाता था। ब्र. गोपालानन्द जी ने अपनी आँखों से आसन उठा हुआ देखा था। ब्र. गोपालानन्द जी आर्य समाजी विचारों के थे उन्होंने उस महात्मा से दीक्षा लेने की प्रार्थना की। किन्तु उन्होंने कह दिया हम तुम्हारे गुरु नहीं हैं तुम्हारे गुरु और हैं उनका शरीर पंजाब का है वे तुम्हें सहारनपुर में मिलेंगे। गोपालानन्द जी सहारनपुर आ गये वहीं अपना चिकित्सकीय कार्य करने लगे। सहारनपुर के पास नकुड़ में एक और महात्मा थे वे भी पंजाब के थे। गोपालानन्द जी ने उन्हें ही अपना गुरु समझकर उनसे दीक्षा ले ली किन्तु वे अत्यन्त क्रोधी थे। उन्हीं दिनों श्री प्रभु जी सहारनपुर आये। सहारनपुर में हमारे गुरु भाई हरिश्चन्द्र थे जो गोपालानन्द जी के भी मित्र थे। वे गोपालानन्द जी को श्री प्रभु जी के पास लाये। वह गुरु पूर्णिमा का दिन था गुरुदेव की आरती पूजन का क्रम चल रहा था। यह देखकर उनके मन में आया यह भी ढोंग ही है।

श्रीप्रभु जी के पास पहुँचने पर श्री प्रभु जी ने उनसे कहा–भाई ! तुम कोई ऐसा महात्मा देखो जिसकी लम्बी–लम्बी दाढ़ी जटायें हों, धूनी रमाई हो, तपस्वी हो। हम तो साधारण ब्राह्मण हैं। गोपालानन्द जी के मन का भाव जानकर श्री प्रभु जी ने कह दिया। प्रभु जी के वचन सुनकर गोपालानन्द जी उनके चरणों में गिर गये और कहने लगे आप हमें दीक्षा दे दो। प्रभु जी कहने लगे–अच्छा ठीक है ! तुम यह बताओ तुम्हारे गुरु ने जो मन्त्र दिया है उसे ही रहने दें या और मन्त्र दें। गोपालानन्द जी कहने लगे–महाराज ! मन्त्र वही रहने दो उसी में चैतन्यता आ जाये। श्रीप्रभु जी ने एक मिट्टी का ढेला देते हुए

कहा–ले, खा ले इसे। खाकर ब्र० गोपालानन्द जी ध्यान में बैठे तो उसी दिन उन्हे भगवान कृष्ण के दर्शन हो गये। गोपालानन्द जी के इष्ट भगवान कृष्ण थे और वे उनमें लय रहा करते थे। अस्तु।

मै इस बात का जिक्र कर रहा था कि मुल्खराज जी को मूलाधार कमल सिद्ध था और वह सिद्धि को हुकुम देकर वर–शाप दिया करते थे। ब्र. गोपालानन्द जी और मुल्खराज जी महाराज के स्वभाव में काफी अन्तर था। मुल्खराज जी थोडा क्रोध स्वभाव के थे और गोपालानन्द जी शान्त स्वभाव के थे। श्रीप्रभु जी ने गोपालानन्द को निर्देश दिया हुआ था कि उन्हें किसी का कोई काम करना हो तो सहस्रार कमल में सद्गुरु तत्त्व को पहचान कराके जो कुछ कहोगे वह हो जाया करेगा। गोपालानन्द जी ऐसा करते थे। सहस्रार में मन को ले गये वहाँ पहुँचकर जो कुछ कहा हो जाता था। एक घटना सुनाता हूँ। लाहौर में जिस समय ब्र. गोपालानन्द जी योग प्रचार करते थे उनका एक सत्संगी मृत्यु शैय्या पर पड़ गया, गोपालानन्द जी ने सहस्रार कमल में सिद्धि से कह दिया कि मैं जब तक वापिस न आऊँ तब तक इसके प्राण न निकलें। उनके माता–पिता कहने लगे–आप कही मत जाओ अब यह कुछ क्षणों का मेहमान है। उसके बाद आप की जहाँ इच्छा हो चले जाना। ब्र. गोपालानन्द जी ने कहा– मै ऋषिकेश अवश्य जाऊँगा। इसके लिये जो कुछ होगा वही से होगा किन्तु जब तक मै वापिस नही आऊँगा यह मरेगा नही।

वे ऋषिकेश श्री प्रभु जी के पास पहुँच गये। उन दिनों मै भी श्री प्रभुजी के चरणों मे ऋषिकेश रहा करता था। गोपालानन्द ने ऋषिकेश मे श्री प्रभुजी के चरणों में आकर कहा–नन्दलाल आप का खास बच्चा है इसको आप बचाइये। श्रीप्रभु जी कहने लगे–अरे गोपालानन्द ! इस तरह क्यो पीछे पड़ता है। उसका अन्त समय है उसे अपने शरीर को छोड़ने दे आगे और शरीर पावार प्रारब्ध को भोगेगा। तू इसको बचा लेगा तो.....गोपालानन्द जी ने श्री प्रभु जी के चरण पकड लिये और कहने लगे इसको तो आप बचाइये ही। प्रभु जी ने कहा–यदि ऐसी बात है तो बच जायेगा। जा ! तू लाहौर चला जा वहाँ वह तुझे खाता पीता स्वस्थ मिलेगा। वैसा ही हुआ। इस प्रकार से गोपालानन्द जी सिद्धि को हुकुम दे आये थे कि जब तक वापिस न आये नन्दलाल के प्राण तब तक बचे रहें। अस्तु।

मैं तुम्हें प्रभु जी की कृपा एवं महिमा बता रहा हूँ। हमारे गुरुभाई मुल्खराज जी महाराज गृहस्थी थे। जब उनकी धर्म पत्नी का देहान्त हो गया वे रोये नहीं, किन्तु जब उसके परिवार के लोग रोते हुये आये तो इनके भी आँसू आ गये। उनके ऐसा करने पर मुल्खराज जी महाराज ने देखा कि दिव्य विमान में बैठी दिव्यदेहधारी महिला उनके सामने आई है वह कह रही है– स्वामी आप शोक मत करें। आपके कारण ही प्रभु ने मुझे दिव्य लोक दिया है किन्तु आपके आँसू मुझे यहाँ खींच लाये। मुल्खराज जी कहने लगे–अच्छा ! यदि यह बात है तो चली जाओ अपने लोक को। वह अपने लोक को वापिस

चली गई। उसके बाद श्री प्रभुजी के दर्शन हो गये। प्रभु जी कहने लगे तुम दुःखी हो रहे हो, देख मेरी ओर। प्रभु जी ! मैं आपको देख रहा हूँ। मैं कौन हूँ ? प्रभु जी ! आप मेरे गुरुदेव हैं, फिर देख–प्रभु जी ! आप इस समय ब्रह्मा रूप में हैं। फिर देख–प्रभु जी आप विष्णु रूप हैं। फिर देख–प्रभु जी ! आप शिवरूप हैं। तू अपने को देख–प्रभुजी मैं मुल्खराज हूँ। फिर देख–प्रभु जी मैं तेज स्वरूप हो गया हूँ। मुझे फिर देखो–प्रभुजी ! अब आप ओंकार स्वरूप हैं। फिर देख–प्रभुजी ! अब केवल अखण्डमण्डलाकार प्रकाश दीखता है आप की कोई शक्ल दिखाई नहीं दी। अपने आपको देख–प्रभुजी ! मेरी भी शक्ल दिखाई नहीं दे रही है। मैं भी अखण्डमण्डलाकार तेज में मिला हुआ दिखाई दे रहा हूँ। श्री प्रभु जी ने कहा–और क्या देखता है इसमें ? तेरी पत्नी दिखाई देती है ? नहीं ! प्रभु जी ! और कोई कुटुम्बी दिखाई दे रहा है ? नहीं प्रभु जी ! तेरा शहर अमृतसर दिखाई दे रहा है ? नहीं प्रभु जी ! हम दीखते हैं ? नहीं प्रभु जी ! फिर क्या दिखता है ? प्रभु जी ! अखण्डमण्डलाकार तेज ही तेज दिखाई दे रहा है। मेरे अनुभव में एक ही आवाज आ रही है अस्मि, अस्मि अहमेवास्मि।

मैं तुम्हें समझा रहा था अस्मितानुगत समाधि। यह तो अस्मि प्रत्यय का बोध है–यह ही निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहलाती है। यह चित्त की अन्तिम वृत्ति होती है, जो सभी वृत्तियों को समाप्त करके स्वयं भी समाप्त हो जाती है। यह वृत्ति की समाप्ति पर योगी को निर्बीज समाधि होती है। अस्मितानुगत समाधि की सिद्धि के रूप में योगी को दो विशेष ताकत मिलती हैं उनमें एक है चित्त निर्माण की योग्यता। इस क्षमता से योगी अपने हजारों चित्त बना सकता है। तुम लोग कहा करते हो–ध्यान में श्री प्रभु जी ने दर्शन दिये, आशीर्वाद दिया, हमें श्रीकृष्ण के–शिव के दर्शन हुये आदि–आदि। किन्तु प्रभु जी वहाँ स्वयं नहीं आते हैं उनके बनाये हुये चित्त आया करते हैं और बातचीत किया करते हैं। इस प्रकार से योगी चित्त निर्माण से एक साथ हजारों चित्त बनाकर अपने भक्तों के पास जाया करते हैं। और उनके कष्ट निवारण किया करते हैं। इस प्रकार से योगी एक जगह बैठा हुआ ही हजारों व्यक्तियों के मन की बात को अपने चित्तों को भेजकर जान लिया करता है। यह जो प्रधान चित्त होता है उसके अधीन अथवा इच्छानुसार ही अन्य बस चित्त काम करते हैं। यह एक ताकत अस्मितानुगत समाधि प्राप्त योगी की होती है। दूसरी ताकत होती है–**ऋतम्भरा प्रज्ञा** की। हम लोगों के मनों में जो बातें आती हैं प्रायः असत्य ही आती हैं। हम सोचते हैं हमारा अमुक व्यक्ति वहाँ पर कैसे होगा ? कोई कष्ट में तो नहीं होगा। इस प्रकार हम लोगों को अनावश्यक चिन्ता बनी रहती है किन्तु वह व्यक्ति ठीक होता है इस प्रकार से हम सामान्य व्यक्तियों के संकल्प असत्य होते हैं। किन्तु अस्मितानुगत योग में पहुँचे हुये योगी के मन में जो संकल्प आता है वह सत्य ही आता है।

श्री प्रभु जी के समय में ऋषिकेश आश्रम में टहल सिंह रहता था। वह ध्यान में बैठा हुआ था उसने एक व्यक्ति को ध्यान में देखते हुये प्रभु जी को बताया–प्रभुजी यह व्यक्ति

लाहौर से आपसे मिलने के लिये आ रहा है। आधा घण्टे के बाद कहने लगा—अब वह अमुक गाड़ी में सवार हो गया है। सारी रात उसकी बातें बताता रहा। प्रातःकाल वह आदमी ऋषिकेश स्टेशन पर उतर गया है वह आदमी काला पायजामा व काली टोपी पहने हुये है। थोड़ी देर में कहने लगा, वह अब हमारे आश्रम के दरवाजे के पास ही पहुँच गया है। थोड़ी देर में ही वास्तव में ही वह व्यक्ति आश्रम के गेट पर पहुँच गया और अन्दर आने लगा। टहल सिंह कहने लगा—यही व्यक्ति है जो शाम को ६ बजे गाड़ी से चलकर अब वह आश्रम पहुँचा है। उस आदमी ने अन्दर आकर श्री प्रभुजी से कहा—महाराज जी मैं लाहौर से आया हूँ और आप को लेने ही आया हूँ। सारी बातों को सत्य जानकर जितने भी हम लोग वहाँ मौजूद थे टहल सिंह से पूछने लगे—अच्छा। बताओ! तुमने ये सारी बातें कैसे जान ली। वह कहने लगा। मन में बात आई और मुझे साथ-साथ दृश्य भी दिखाई देने लगा—टहल सिंह कोई बड़ा तपस्वी नहीं था। किन्तु प्रभुजी के शक्तिपात के कारण उसमें यह ताकत आई। उसका तो इतना ही तप था कि वह अल्पाहार करके नियमित ध्यानाभ्यास में बैठता था और गुरुनिष्ठ था। इसलिये टहल सिंह को भी सद्गुरु कृपा से प्रज्ञा स्फुरणा हो गई। तुम्हारे गुरु भाईयों में भी ऐसी ताकतें आई। तुम्हारा एक गुरुभाई रघुनन्दन प्रसाद (टाटबाबा) था। उसमें भी प्रभु कृपा से ऋतम्भरा प्रज्ञा पैदा हो गई थी। वह सवाई आश्रम में हमारे पास रहा। हमने उसे कठोर तप और अनुष्ठान कराये। तप-स्वाध्याय से सिद्धों के दर्शन होते है और योगी को वरदान आदि मिल जाते है। एक बार वह मेरे साथ बद्रीनाथ की तरफ शतपथ के रास्ते में बैठा हुआ था। बातों के ही दौरान वह मुझसे कहने लगा—गुरुजी! पता नहीं आजकल मेरे में नई शक्ति पैदा हो गई है। मैंने पूछा—क्या ताकत आ गई है मन में? वह कहने लगा 'जो काम हो रहा होता है, जो घटना घट रही होती है वह मेरे मन में आती है।' मैंने उससे पूछा इस समय तेरे मन में क्या आ रहा है? वह कहने लगा—इस समय मेरे मन में आ रही है कि हरिद्वार में वर्षा हो रही है। हमने पता कराया तो यथार्थ में ही वर्षा हो रही है। उसी समय कुछ गृहस्थी घूमते हुये वहाँ आ गये। उसको जटाजूट देखकर प्रणाम करने लगे। वह कहने लगा—'मेरे गुरुदेव बैठे हुये है, तुम मुझे प्रणाम कर रहे हो। फिर उसने मुझे स्वयं प्रणाम किया। फिर भी उन लोगों को विश्वास नहीं हुआ। उनमें से एक व्यक्ति दुःखी था। उसको देखकर रघुनन्दन प्रसाद कहने लगा। तू यहाँ घूम रहा है तेरी स्त्री छः महीने से बीमार पड़ी हुई है। चला जा। नहीं तो तीन दिन में मर जायेगी—तेरे हाथ कुछ नहीं लगेगा। वह आश्चर्य में पड़ गया। फिर उसने मुझसे कहा—महाराज जी! बात बिल्कुल सही है मेरी स्त्री वास्तव में बीमार है। यह कहकर वह व्यक्ति वापिस घर चला गया। उसकी पत्नी की रक्षा हो गई। मैंने रघुनन्दन प्रसाद से पूछा—तुम्हें कैसे पता चला? वह कहने लगे 'महाराज जी! मेरे मन में जो भाव आया फिर उसके बाद मुझे वह बीमार स्त्री भी दिखाई दे गई। और एक घटना रामस्वरूप की दीक्षा के समय की मैं तुम्हें सुनाया करता हूँ। रामस्वरूप वैद्य सफीदों (हरियाणा) का रहने वाला

था। श्री सिद्ध गुफा में मुझसे दीक्षा लेने आया हुआ था। रघुनन्दन प्रसाद ने बताया तुम्हारी पत्नी ने अभी–अभी लड़की को जन्म दिया है। उसको यह सब ज्ञान अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा के बल पर ही होता था। अस्तु। तुम्हारे एक गुरुभाई हरि प्रसाद शास्त्री हैं। उनको तप एवं गुरु कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी। ऋतम्भरा तक तो वह पहुँचा नहीं था किन्तु दिव्य दृष्टि उसे प्राप्त थी। वह अपने ऊपर मकान के चौबारे में बैठा–बैठा ही गली में आने जाने वाले व्यक्ति को बता देता था कि अमुक व्यक्ति आ रहा है। पता लगाने पर वही आदमी होता था। यह मन्त्र जाप एवं तप का उत्कृष्ट परिणाम था। जितनी घटनायें बताई हैं वह सब ऐन्द्रिय सिद्धि एवं ऋतम्भरा से सम्बन्धित हैं। इसलिये केवल मात्र योग का ही रास्ता ऐसा है जिसमें चल कर मनुष्य अपनी ताकत का स्वयं मालिक होता है।

कुण्डलिनी महाशक्ति हम सब की ताकत है। देवताओं की भी ताकत वही है। उनकी कुण्डलिनी जागी रहती है हमारी सोई हुई होती है इसलिये मनुष्य दीन बनकर भागता रहता है, भैरव जी मुझे यह दे दो, हनुमान जी! मुझे यह दे दो। प्रेत पिशाच की उपासनायें करके उनसे माँगता फिरता है।

किन्तु योगी कुण्डलिनी महाशक्ति को जगाकर षटचक्र भेदन करके अपनी शक्ति का स्वयं स्वामी बन जाता है। यदि मनुष्य इस रास्ते पर चलता है तो वह शक्तियों का स्वामी बन जाता है इसी के आधार पर सिद्ध लोग जंगलों में बैठे हुये हैं। बड़ी–बड़ी अद्भुत रचना की हुई है उन्होंने। श्री प्रभु जी अपने मुखार बिन्द से बताया करते थे हिमालय में ऐसे–ऐसे योगी हैं जिन्होंने सृष्टि बना ली है किन्तु किसी को पता नहीं कि यह सृष्टि किससे व कैसे बनी। कुछ वर्ष पहले की बात है एक अखबार में एक घटना छपी थी उसमें एक अंग्रेज के अनुभवों का वर्णन निकला था। अंग्रेज ने लिखा–मैं योगियों की तलाश में हिमालय की ओर गया। वहाँ पर मैं तप और स्वाध्याय करता रहा। एक दिन मैं ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ एक वृद्ध योगी बैठा हुआ था। और आस–पास में बहुत से स्त्री–पुरुष भी थे लेकिन एक विशेषता वहाँ देखने में आई कि वहाँ कोई बच्चा या बूढ़ा दिखाई नहीं दे रहा था। सब युवावस्था के थे। मैंने उस योगी से पूछा–बाबा! आपकी आयु क्या होगी! उन्होंने कहा–मैं कई हजार वर्षों का हूँ। इस प्रकार से हिमालय में योगियों ने योग शक्ति से काय निर्माण द्वारा अपने कई–कई शरीर बनाये हुये हैं। योग से मनुष्य सब कुछ हो जाता है सारी ताकतें इसके अन्दर आ जाती हैं। ईश्वर और योगी में कोई अन्तर नहीं रहता, बस अन्तर इतना ही रहता है कि ईश्वर अनादि सिद्ध है और योगी अभी सिद्ध हुआ है योगदर्शन में इसका लेख मिलता है व्यास भाष्य में–प्रश्न हुआ कि बहुत से केवली भाव को प्राप्त हुये सिद्ध हो चुके हैं। तो वे सब क्या ईश्वर माने जायेंगे? उत्तर मिला–ईश्वर नहीं माने जायेंगे जब तक उनका शरीर है तब तक नहीं माने जायेंगे और जब उनकी चित्तशक्ति उनमें मिल जायेगी तो माने जायेंगे। तो भेद रहा तो इतना ही रहा कि ईश्वर अनादि सिद्ध है और ये नवीन सिद्ध। सृष्टि निर्माण संहार की शक्ति तो इनमें आ जाती है। भारद्वाज ऋषि ने

भरत के आतिथ्य के लिये अपने संकल्प से हजारों दास दासियाँ उत्पन्न कर दी और दिव्य महलों की रचना कर दी। इसी प्रकार सीताजी ने भी अपनी योग महिमा से दिव्य वस्तुएँ दास–दासियाँ उत्पन्न कर दी। मैं तुम्हें समझा रहा था **'यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति सैषा योग विद्या'** जिसके ज्ञान लेने पर सभी कुछ जान लिया जाता है वह योग विद्या है। योग से ही मनुष्य धनी बनता है, सर्वज्ञाता बनता है इसलिये तुम लोग कुण्डलिनी महाशक्ति को जगाकर योगी बन जाओ। जिसकी महाशक्ति जाग जायेगी वही धनी बनेगा नहीं तो सब दरिद्र ही है।

'मनुष्यो देवानाम् पशु' मनुष्य देवआत्मों का पशु बना रहता है। इसलिये दो घण्टे जाप एवं एक घण्टा ध्यान का नियमित क्रम बनाओ। हम तो निमित्त मात्र है। मैं तो उनका (प्रभुजी) एक सिपाई हूँ सिपाही। आज्ञा मिली थी ऋषिकेश में। मैं तो जंगल में जाने को तैयार हो गया था। हमने अपनी जटा बना ली थी, राख लगा ली थी मृग छाला पहन लिया था अपने गुरु भाई चिरंजीलाल को कह दिया था 'भाई'। प्रभुजी से मेरा प्रणाम कह देना मैं जंगलों में जा रहा हूँ। मैं मृगचर्म आदि लपेट कर आश्रम से बाहर जाने को तैयार हो गया और बाहर जाने के लिए चल पड़ा। तुम श्री प्रभुजी की अन्तर्यामिता को जानोगे ? मैंने अपना एक पैर गेट से आगे बढ़ाया, पोस्टमैन उसी समय पत्र देता है। पत्र मेरे नाम से था। उसमें प्रभु जी ने लिखा था 'चि० हम बस्तियों में बैठे हैं और तुम जंगलों में जा रहे हो ? जो कदम तुमने आगे बढ़ाया है उसे पीछे कर लो समय आने पर जहाँ कुछ जैसा करना होगा हम करेंगे। अभी तुम यह कदम पीछे कर लो, तुम्हारे द्वारा हमें अभी काफी काम लेना है, मैंने वह कदम पीछे हटा लिया। मृगछाला उतार दी और फिर धोती कुर्ता आदि पहन लिये। श्रीप्रभु जी ने जो काम बताया वह मैं करता आ रहा हूँ अब तक। इस प्रकार से मैं उनके एक सिपाही की तरह आज्ञा पालन में लगा हूँ। इसलिये तुम लोगों को अपने को योगध्यान में लगा लेना चाहिये। निरन्तर ५ से ७ बजे प्रातः ध्यानयोग में बैठ जाया करो और जो ध्यान पद्धति बताई है वैसा ध्यान करो। हमारे श्रीप्रभु जी सर्व शक्तिमान हैं। वे ऐसे गुरु नहीं है 'काना बाती कुर, तू चेला मैं गुर'। वह तो करण–करण काल चक्र युग चक्र को घुमाने वाले हैं। नेपाल धाम में बैठे हुये भी यहाँ हर किसी को देखते हैं, जो उनकी दृष्टि में पड़ गया वह तर जायेगा। उसकी अन्तर्स्थिति बन जायेगी। देखो ! भूल मत करो। अपने मन्त्रों का जाप करो, भीतरी प्रकाश को पा जाओगे तो तर जाओगे, तारने वाले बन जाओगे। इसलिये श्रीप्रभु जी के चरणों को याद करके नित्य ध्यानाभ्यास में बैठो यदि ऐसा करोगे तो उनकी कृपा अवश्य होगी, सबका भला होगा।

।। बार-बार आशीर्वाद।।

• सम्पादकीय

परम गुरुदेव योगेश्वर महाप्रभु रामलालजी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

भगवान् की भाँति महायोगेश्वरों का भी जन्म व कर्म दिव्य होता है। भगवान् की प्रतिज्ञा है कि भक्तों की रक्षा के लिये, दुष्टों का नाश करने के लिये तथा धर्म की संस्थापना के लिये उनका अवतार होता है। अजन्मा, निर्गुण होते हुये भी भगवान् योग माया का सहारा लेकर शरीरों को धारण करके अपने कार्य को सम्पादित कर लिया करते है। चौरासी लाख योनियों मे मानव ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। इस शरीर के द्वारा मनुष्य परमात्मा को पा सकता है। रोग, शोक व दुःखों से तिलमिलाते–तड़पते मनुष्य पर कृपा कर उसे योग का अमर पथ दिखाते है जिस पर चलकर मनुष्य मुक्ति को पा जाया करता है। वेद, शास्त्रों का उद्घोष है कि योग से ही मनुष्य का परम कल्याण हो सकता है, अन्य उपायों से नहीं।

योग विद्या की धारा प्राचीनकाल से ही दो स्रोतों से बहती आ रही है। इनमें से एक धारा जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज के द्वारा आई है। भगवान् गीता में कहते है कि इस अव्यय योग विद्या को मैंने सर्वप्रथम सूर्य को बताया था। सूर्य ने मनु को तथा मनु ने ईक्ष्वाकु राजा को इस अध्यात्म विद्या को दिया था। इस प्रकार से योगयोगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्र जी से इस विद्या का प्रवर्तन हुआ है। दूसरा स्रोत भगवान योगीश्वर सदाशिव से आया है। उपनिषदो के अनुसार भगवान सदाशिव ने इस अमरविद्या का ऋषियों को उपदेश किया है। ब्रह्मा जी को उपदेश करते हुये भगवान् महेश्वर कहते है कि चाहे कोई धर्मज्ञ हो, ज्ञान निष्ठ हो, विरक्त हो किन्तु बिना योग के कोई मुक्ति को प्राप्त ही नहीं कर सकता।

यही योग समय–समय पर लुप्त हो जाने पर महायोगेश्वरों के द्वारा पुनः प्रकाश में आया करता है। योगेश्वर महाप्रभु श्रीरामलाल जी महाराज इस कलिकाल में लुप्त योग विद्या के पुनर्प्रकाशक के रूप में संसार में कई नामों से एक ही समय में अथवा भिन्न–भिन्न समय में कई स्थानों पर प्रकट होकर इस अमर विद्या का प्रचार करते आये है।

उपनिषदो मे आया है कि योगी अचिन्त्यशक्ति सम्पन्न होते है। वे नाना रूप धारण करके संसार में कार्य किया करते है तथा कार्य की पूर्ति हो जाने पर उन नाना शरीरों को उसी प्रकार से समेट लेते है जिस प्रकार से दिन के अवसान पर सूर्य अपनी रश्मि समूह

को समेट लेते हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार महाप्रभु रामलाल जी महाराज निर्माणकाय विधि से अनेक शरीर बनाकर, जगह-जगह पर योग का प्रचार करते हैं। इस बात की पुष्टि प्रमाण सहित हमारे सद्गुरुदेव योगिराज जी चन्द्रमोहन जी महाराज अपने श्री मुख से किया करते थे। महाप्रभु जी के विषय में लाखों वर्ष पूर्व ही महर्षि काक भुशुण्डिजी ने भविष्यवाणी की हुई है। उनके अनुसार पंजाब प्रान्त में अमृतसर शहर में इन महापुरुष का जन्म होगा जो **'प्रभु रामलाल'** के नाम से विख्यात होंगे। शिव स्वरूप ये महापुरुष योग विद्या का प्रकाश करेंगे जिससे लाखों भक्त इस मार्ग पर चलकर मुक्ति भाजन बनेंगे। भविष्यवाणी के अनुसार ही सब बातें घटित हुई हैं।

श्री प्रभु जी का प्राकट्य गुरुओं की नगरी अमृतसर में वि० सं १९४५ को चैत्र शुक्ला नवमी बृहस्पतिवार को वृष लग्न में स्वनाम धन्य पुण्य श्लोक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद पं० गन्डाराम जी के घर हुआ। परमपूज्या माता श्री का नाम भागवन्ती देवी था। सारस्वत ब्राह्मणों में जोशी वंश उज्जवल वंश है। इसी वंश में पं० हरिराम जोशी जी हुये। आगे इन्हीं की पाँचवीं पीढ़ी में पं० चढ़तराम जी अत्यन्त धर्मात्मा व वैराग्यवान महापुरुष हुये। इन्हीं के यहाँ पं० सांई दत्त का जन्म हुआ। आप बाल्यकाल से ही परम सदाचारी, भगवत् प्रेमी तथा परम शुद्ध विचारों के थे। बचपन में ही कठोर अनुष्ठान व साधना के परिणामस्वरूप आपमें अलौकिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हो गया था। अपने संकल्पमात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्ज्वलित कर देना, इच्छा मात्र से वर्षा करा देना आदि-आदि विभूतियाँ आपको सहज प्राप्त थीं। आगे इनके दो पुत्र पं० कन्हैयालाल व पं० सुखदयाल हुये। पं० कन्हैयालाल जी बहुत ही दयालु तथा विद्वान पुरुष थे। इन्हीं परम भागवत् पुण्यशाली भक्त के यहाँ एक पुत्ररत्न ने जन्म लिया जिनका पावन नाम 'गन्डाराम' रखा गया। बड़े होकर आप बहुत बड़े ज्योतिषी हुये। दूर-दूर से लोग आपके पास कुण्डली बनवाने तथा फलादेश जानने के लिये आते। आप जैसा बताते वैसे ही सत्य घटित हो जाता था।

आपकी तपस्या तथा अत्यन्त भक्ति व पुण्य के कारण आपके यहाँ साक्षात् प्रभु का अवतरण हुआ। इनका परम पावन नाम रामलाल रखा गया। धर्मार्थ काम मोक्ष के देने वाले महापुरुष का नाम चार अक्षरों में रखा गया। आप सदैव मुक्त, सदैव सिद्ध महापुरुष है तथा त्रयताप से झुलसते हुये मनुष्यों को त्राण देने के लिये तथा योग का अमरपथ दिखाने के लिये सद्गुरु के रूप में आप प्रकट होते रहते हैं। आप अनेक नामों तथा अनेक शरीरों को धारण करके योग विद्या का प्रचार करते हैं। ध्यान योग की विद्या की अनुभूति कराकर योग मार्ग में लगा देते हैं। बाल्यकाल से ही आपने अपने अलौकिक योगैश्वर्य का

परिचय दे दिया था।

पिताश्री ने इनके अध्ययन की प्रारम्भिक व्यवस्था घर पर ही रखी। आपका वैराग्यवान मन लौकिक शिक्षा में कैसे लग सकता था ? ५ वर्ष की अल्पायु में ही आप तीर्थ भ्रमण के लिये चल पड़े। तीर्थों में जाकर आपने संस्कृत तथा योगशास्त्रों का अध्ययन किया। कुछ दिन आप कुरुक्षेत्र रहकर संस्कृत पढ़ते रहे। अध्यापक आपके अलौकिक प्रभा से अचम्भित रहते थे। एक दिन विद्यार्थियों ने देखा कि एक काला नाग जिसके कई फन थे इनके ऊपर छाया किये हुये था, क्योंकि आप सो रहे थे आपको कोई पता नहीं था। सहपाठी व अध्यापक भयभीत थे। बाद में वह सर्प कहीं अदृश्य हो गया। इस घटना से भी लोग इन्हें अवतार मानकर अत्यन्त आदर करते थे। कुछ दिन हरिद्वार तथा वाराणसी में रहकर वे अध्ययन करते रहे।

आपने अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों पर खूब कृपायें की। बनारस में उन दिनों भैरवी चक्र तथा अन्य कई तांत्रिक प्रयोगों के द्वारा दुराचार तथा अनाचार फैला हुआ था। आपने अपनी योग शक्ति से अनाचारजन्य गलत प्रथाओं को दूरकर बुराइयों को नष्ट कर दिया। बड़े-बड़े तांत्रिकों ने आप पर तन्त्र प्रहार किये किन्तु सब निष्फल रहा, इनका कोई कुछ भी बिगाड़ न सका। तीर्थों के दर्शन करते हुये आप श्रीधाम वृन्दावन पहुँचे। वहाँ दर्शनीय स्थलों के दर्शन करते हुए दाऊजी होते हुये बरहन गाँव पहुँचे। कुछ दिन वहाँ रहकर आगे संवाई गांव में आ गये। वहाँ पर आपके दिव्य दर्शन करके प्यारेलाल आदि आपके अनन्य भक्त बन गये। वहाँ एकान्त स्थान पर आपने अपना आसन लगा लिया। आपके तेजस्वी स्वरूप को देखने के लिये वहाँ हर समय भीड़ रहने लगी। लोग अपनी परेशानियों को दूर कराने के लिये दूर-दूर से आने लगे। लोगों को मुँह माँगा वरदान मिलने लगा तथा सभी की मनोकामना पूरी होने लगी। २०-२२ वर्ष के ये महायोगेश्वर जिस पर अपनी कृपा कर दिया करते वे सब प्रकार से धन्य हो जाता। लोगों की आधि-व्याधि दूर होने लगी। आप आपने भक्तों के लिये कल्पवृक्ष बन गये।

अब आपने हिमालय की ओर जाने का मन बनाया। भक्त आपके विचार को जानकर अधीर हो गये। उन्होंने आपके लिये एक गुफा का निर्माण कर दिया ताकि आप निर्विघ्नतापूर्वक समाधि में बैठे रह सकें। यह सन् १९११ की बात है। यहाँ आप दो ढाई वर्ष रहे। अष्ट सिद्धियाँ आपके अधीन थीं। एक दिन आप अणिमा सिद्धि से गुफा से बाहर निकल गये और आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चले गये। मार्ग में भारत नेपाल की सीमा पर रामरत्ती नाम की दुश्चरित्रा स्त्री पर शक्तिपात करके उसे योगिनी बना दिया और उसे कई वर्षों की अखण्ड समाधि में डाली। इस प्रकार से एक पतिता नारी को एक सिद्ध योगिनी

बनाकर हिमालय की अवधूतानि बना दिया। कुछ वर्ष हिमालय में रहने के बाद अपने गुरुदेव सदाशिव की आज्ञा से पुनः आप पृथ्वी मण्डल पर आ गये। समाज में आकर योग विद्या के अमर सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने के लिये आश्रमों की स्थापना की। सन् १९२१-२२ में आपने ऋषिकेश में योग साधन आश्रम की स्थापना की। उन्हीं दिनों में अमृतसर के पास छरहटा में आश्रम बनवाया। पंजाब में लाहौर में भी अस्थायी आश्रम खोलकर योग का धूम-धाम से प्रचार होने लगा। योग के बहिरंग साधन नेति, धोती, प्राणायाम से रोगियों का निःशुल्क इलाज किया जाता था अन्तरंग साधन में ध्यान योग तथा कुण्डलिनी जागरण की शिक्षा-दीक्षा दी जाती थी। साधकों का आत्मिक उत्थान तीव्रता से होता था। शक्तिपात से कुण्डलिनी प्रबोध तथा ध्यान की उच्चतम स्थितियाँ साधकों को प्राप्त कराई जाती थीं। आपके विरक्त शिष्यों में योगिराज मुल्खराज जी महाराज, सद्गुरु देव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, ब्र० श्री गोपालानन्द जी महाराज, योग नृसिंह मूर्ति जी, माता द्रोपदी देवी जी तथा महात्मा ऋषिदेवा जी थी।

आगे चलकर इन्हीं के द्वारा सिद्धयोग की परम्परा चली। श्री प्रभुजी के इन शिष्यों ने स्थान-स्थान पर योग आश्रमों की स्थापना की। सद्गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के उत्तर भारत में कई आश्रम हैं। श्री मुल्खराज जी महाराज के तीन मुख्य शिष्य श्री देवीदयाल जी, प्रो० चमनलाल कपूर तथा श्री योगी रामप्यारे जी हुये। इनके हरियाणा पंजाब तथा उत्तरप्रदेश में बहुत से आश्रम हैं। इन सभी आश्रमों में श्री प्रभु जी के स्वरूप की स्थापना है और शिष्यगण उन्हें शिवरूप मानकर आराधना करते हैं। योग का जितना भी प्रचार हो रहा है सब श्री प्रभु जी के आश्रमों से ही हो रहा है। आप योग विद्या के उद्धारक के रूप में माने जाते हैं।

श्री प्रभुजी ने सिद्धयोग परम्परा को चलाया है। सिद्धगुरुओं की कृपा से जो योग चलता है उसे सिद्धयोग प्रणाली कहते हैं। गुरु के संकल्प मात्र से शिष्य की प्रसुप्त शक्तियाँ जागृत हो जाती है। साधक के शरीर में स्वतः ही विभिन्न क्रियायें होती रहती है और अन्ततः योगी सम्प्रज्ञात समाधि में अवस्थित हो जाता है। ज्ञान-विज्ञान का उद्घाटन उसके चित्त में स्वतः ही होता है आगे पूर्ण चित्तवृत्ति के निरोध हो जाने पर निर्विकल्प समाधि में अवस्थित हो जाता है।

श्रीप्रभु जी का इस वर्ष ११८वाँ प्राकट्य दिवस उनके शिष्यों के द्वारा श्री रामनवमी के दिन देश और विदेश में जगह-जगह मनाया जा रहा है। आइये ! सभी उनके शिष्य अपने महाप्रभु का पावन प्राकट्य (प्रकाश) दिवस धूमधाम से मनायें। इस पावन अवसर पर सभी भक्तों का परम पावन चरण कमलों में कोटि-कोटि प्रणाम है।

हिमालय के अमर महायोगी

पूर्णचन्द्र पन्त

योगिराज चन्द्रमोहन जी को स्वप्न में दर्शन देकर अपने पास बुलाना और उन्हें सकल योगैश्वर्य का उत्तराधिकारी बना देना

योगिराज चन्द्रमोहन जी श्रीप्रभु जी के अनन्य भक्तों और सर्वतोभवेन समर्पित शिष्यों में से एक है।

उनका जन्म जिला करनाल (हरियाणा के ग्राम अलुपुर में पवित्र गौड़वंशीय ब्राह्मण पंडित देवी राम जी के घर १६ अक्टूबर सन् १९०७ को हुआ।

वे जन्म से ही योगी थे और योगेश्वर श्री कृष्ण में लय रहा करते थे। ४–५ वर्ष की आयु में ही उन्हें श्रीकृष्ण के बाल रूप में दर्शन हुआ करते थे और वे उनके साथ खेला करते थे। कभी–कभी उन्हें परम तेजस्वी स्वरूप में भी श्रीकृष्ण के दर्शन हुआ करते थे। उनकी बाल लीलायें श्री कृष्ण की बाल लीलाओं से मेल खाती थीं। ३–४ वर्ष की आयु में ये अपने घर में रखे मक्खन को चुराकर बड़े चाव के साथ खा जाया करते थे।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई और फिर उच्च शिक्षा के लिये उन्हें श्रीमद दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय लाहौर में प्रवेश दिलाया गया जो कि–उस समय का एक आदर्श गुरुकुल था और तपोमूर्ति आचार्य विश्वबन्धु जी उसके संचालक और प्राचार्य थे। बाद में वे लाहौर छोड़कर अमृतसर में शिक्षा ग्रहण करने लगे। शिक्षाकाल में आपके मन में योगी बनने की प्रबल भावना जाग्रत हुई और इसी भावना के वशीभूत होकर वे अमृतसर नगर से कुछ मील दूर एकान्त में स्थित एक शिवालय में चले गये और दो महीने वहाँ रहकर बड़े तीव्र आवेग से भगवान शंकर की उपासना करते रहे। अनुष्ठान काल पूरा होने से दो दिन पूर्व उन्हें स्वप्न में भगवान शंकर के दर्शन हुए और उनका आशीर्वाद प्राप्त हुआ। अगले दिन योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज के दर्शन हुए और उन्होंने यह आदेश दिया–"अब तुम हमारे पास चले आओ"।

इससे सन्तुष्ट होकर और अपना अनुष्ठान पूरा करके ये अमृतसर लौट गये और अध्ययन कार्य में जुट गये, किन्तु उनके मन में बार–बार यह प्रश्न उठा करता था कि स्वप्न में दर्शन देने वाले वे महात्मा कौन हैं और कहाँ रहते हैं ? सौभाग्य से कुछ ही दिन बाद योगिराज मुलखराज जी महाराज से उनकी भेंट हुई और उनसे प्रभु का परिचय पाकर वे उनके दर्शनार्थ योग साधना आश्रम ऋषिकेश पहुँच गये। उस समय उनकी आयु

१८ वर्ष के लगभग थी। प्रभु रामलाल जी महाराज उन्हें देखकर मुस्कराते हुए बोले—"अच्छा ! तुम आ ही गये हो, तुम तो हमसे पूछ रहे थे कि कहाँ आऊँ ? उन्होंने उन्हें बड़े प्यार से कुछ दिन अपने पास रखा, शुभ मुहूर्त्त में विधिपूर्वक योगदीक्षा दी और उनकी आन्तरिक भावना को देखते हुए उन्हें योगसाधना के लिये वृन्दावन भेज दिया। श्रीवृन्दावन धाम में रहते हुए वे नियमपूर्वक प्रात: ब्राह्म मुहूर्त्त में गुरुपदिष्ट विधि से तीन घंटे ध्यानाभ्यास किया करते थे, गुरुमन्त्र का हर समय मानसिक जप करते थे तथा शाम के समय योगेश्वर श्रीकृष्ण की लीला स्थलों के दर्शन किया करते थे। ६ महीने के अनवरत अभ्यास से योगविद्या के सभी रहस्य उनके सामने प्रकट हो गये, उनको महावाक्यों का साक्षात्कार हुआ तथा कुण्डलिनी जागरण एवं षटचक्र भेदन आदि क्रियायें सिद्ध हो गई। १८ वर्ष की अल्पायु में उनको दूरदर्शन, दूरश्रवण, वाक्सिद्धि, संकल्प सिद्धि तथा कार्यनिर्माण आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। इन दुर्लभ सिद्धियों को प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें रत्तीभर भी अहंकार नहीं हुआ। उन्होंने न तो कभी सिद्धियों का प्रदर्शन किया और न अपना अभ्यास ही छोड़ा। उनकी स्थिति वही थी जैसा कि—वे बाद में अपने शिष्यों को सावधान करते हुए कहा करते थे—"योगी को चाहिये कि वह समुद्र पीकर भी अपने होंठ सूखे दिखाये"।

उन्होंने योगेश्वर प्रभु रामलाल जी को सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण कर दिया था। ३२ वर्ष की आयु तक वे प्रभु जी की अगाध श्रद्धा एवं समर्पण भाव से सेवा करते रहे तथा उनके संरक्षण एवं मार्गदर्शन में योग साधना करते रहे। इस बीच प्रभु जी ने कृपापूर्वक उन्हें खेचरी सिद्ध करा दी तथा योगदीक्षायें देने की आज्ञा प्रदान की और स्वयं कुछ महीनों के लिए ऋषिकेश से अल्मोड़ा चले गये। दीक्षा देने में अत्यधिक संकोच करते हुए भी अपने गुरुदेव की आज्ञा के परिपालनार्थ उनकी अनुपस्थिति में उन्होंने कई विरक्त सद्गृहस्थों तथा सन्यासियों को योगदीक्षा दी और उनकी ऊँची—ऊँची ध्यानस्थितियाँ बनी। यह सब देखते हुए भी वे शिष्य ही बने रहना चाहते थे, गुरु बनना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं था, वे प्रपंच से बचना चाहते थे और निवृत्ति मार्ग को अपनाना चाहते थे। उनके मन में वैराग्य के भाव दिन—प्रतिदिन प्रबल होते जा रहे थे।

सन् १९३५ के आसपास की घटना है, उन दिनों प्रभु जी योगसाधन आश्रम ऋषिकेश की व्यवस्था का काम उन्हें सौंपकर स्वयं अमृतसर में निवास कर रहे थे। इसी बीच एक दिन उनके मन में इतना तीव्र वैराग्य जाग्रत हुआ कि—वे मृगछाला, टाट, कमण्डल और शीशी में बकरी का दूध लेकर हिमालय की प्रस्थान करने लगे। ज्योंही वे आश्रम के द्वार से एक कदम आगे निकले त्योंही पोस्टमेन ने आकर उन्हें एक पत्र पकड़ाया। यह पत्र योगेश्वर प्रभु रामलाल जी का था। पत्र में लिखा था—

"चिरंजीव ! हम हिमालय से आकर बस्तियों में रह रहे हैं और तुम हिमालय की ओर जाने की सोच रहे हो। ऐसा करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। तुमने जो कदम आगे बढ़ाया है उसे तुरन्त पीछे हटा लो, यह हमारी आज्ञा है।"

पत्र को पढ़कर उनका सारा उत्साह जाता रहा और वे पीछे मुड़कर आश्रम के अन्दर चले गये। उन्होंने अपने गुरुदेव से मूक निवेदन किया–"प्रभो ! आज मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गयी थी इसके लिये आप मुझे क्षमा कीजियेगा। भविष्य में आपकी आज्ञा के बिना मैं कोई भी नया कार्य नहीं करूँगा। अब मैं वही करूँगा जो आप चाहेंगे या करवायेंगे। आपके पवित्र आदर्शों का पालन करना ही अब मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य होगा।

तब से लेकर योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज सदा–सदा के लिये प्रभु जी के बन गये। उनका मन और बुद्धि श्री प्रभु जी के मन और बुद्धि में लय हो गये।

सन् १९३८ में प्रभु जी के लीलावसान के उपरान्त वे शोकातुर एवं निराश होकर पुन: तीर्थाटन एवं तपश्चर्या करने निकल पड़े और बड़े तीव्र संवेग से कभी वृन्दावन में यमुना जी के तट पर, कभी हरिद्वार में चण्डी पर्वत पर और कभी ब्रह्मपुरी के निर्जन वनों में तपस्या करते रहे। सन् १९४२ में श्रीप्रभु जी की प्रेरणा से वे संवाई ग्राम स्थित उनकी पावन तपस्थली–"गुरु का बाग" पहुँचे। वहाँ उनकी कच्ची गुफा की लिपाई पोताई की, उसका दरवाजा लगवाया तथा उसके पास ही अपने रहने के लिये घास का एक छप्पर बनाया। वह स्थान उस समय एक वीरान जंगल की तरह था। चारों ओर झाड़ी–झंझाड़ थे, जिनमें सर्प, बिच्छू आदि रहा करते थे। श्रीप्रभु जी की पवित्र कीर्ति का विस्तार करने का उद्देश्य लेकर वे गर्मी, सर्दी तथा मच्छरों का आघात सहन करते हुए उस स्थान पर रहने लगे और योग प्रचार कार्य में जुट गये। वे आरम्भ में योगासन तथा यौगिक क्रियाओं द्वारा रोगियों का इलाज करते रहे, बाद में उन्हें अपने सामने ध्यानाभ्यास भी कराने लगे। धीरे–धीरे वहाँ रोगियों, आर्तजनों एवं जिज्ञासुओं की इतनी भीड़ एकत्रित होने लगी कि उन्हें भोजन करने का भी समय नहीं मिल पाता था। वहाँ उन दिनों न तो भोजन बनाने की सुविधा थी और न उसके लिये उनके पास समय ही था। अत: वे मध्यान्ह दो बजे तक लोगों को निपटाकर संवाई ग्राम में स्थित मन्दिर के पुजारी काशीराम जी के पास जाकर भोजन किया करते थे। भोजन एक ही समय करते थे। रात्रि को निराहार रहते थे। वहां से लौटकर अपने हाथ से सूत्र नेतियां तैयार किया करते थे। सन्ध्याकाल को आरती–पूजन के पश्चात् वे ग्रामवासी वृद्धजनों से प्रभु जी की लीला कथाओं को सुनकर आनन्दित हुआ करते थे।

इस प्रकार उन्होंने थोड़े ही समय में ही उस स्थान को एक सुन्दर आश्रम के रूप

में परिवर्तित कर दिया और अपने गुरुदेव योगेश्वर प्रभु रामलाल जी के स्मारक के रूप में उनकी उस तपस्थली का नाम श्री सिद्धगुफा संवाई रखा। यहीं से उन्होंने देश के कोने-कोने में तथा विदेशों में भी प्रभु जी की अमरकीर्ति का विस्तार किया तथा योगविद्या की महिमा से जन-जन को अवगत कराया। उनके सत्यप्रयत्नों से संवाई ग्राम संवाई धाम बन गया और यह पवित्र आश्रम एक "सिद्धपीठ" बन गया।

योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज ने लाखों रोगियों को नीरोग बनाया, लाखों संकट ग्रस्त जनों का संकट दूर किया, हजारों मरणासन्न व्यक्तियों को जीवनदान दिया, हजारों जिज्ञासुओं को शक्तिपात दीक्षा द्वारा योगी बनाया तथा हिमालय की कन्दराओं में वर्षों से योगसाधना में लगे हुए सैकड़ों तपस्वियों को अपने संकल्प मात्र से सिद्ध बना दिया। किन्तु इस सबका श्रेय वे अपने गुरुदेव को ही देते रहे। अपने बारे में वे सदा यही कहा करते थे कि- मैं तो श्रीप्रभु जी का एक मामूली सा सिपाही हूँ। वे तो योग-ऐश्वर्य के स्वामी हैं। सारा भण्डार उन्हीं का है, मैं तो केवल एक करछी की तरह हूँ और करछी का ही काम कर रहा हूँ।

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी अपने गुरुदेव योगेश्वर रामलाल जी महाराज के चित्र को हृदय से लगाकर एवं सामने करके लोगों को योगदीक्षा दिया करते थे और कहा करते थे कि- "इन सबके गुरुदेव श्रीप्रभु जी सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापक हैं, इनका जितना अधिक चिन्तन करोगे योगमार्ग में उतनी ही अधिक प्रगति होगी।"

हजारों जिज्ञासुओं को एक साथ सिद्ध बना देने की सामर्थ्य रखने वाले, हजारों मील दूर अमेरिका आदि देशों में स्थित कई पवित्रात्माओं को पत्र द्वारा पुष्प प्रसाद अथवा सिद्धगुफा की पवित्र रज भेजकर ध्यानयोगी बना देने वाले एक सिद्ध योगिराज अपने को सदैव एक सामान्य व्यक्ति की तरह ही प्रदर्शित करते रहे। उनकी ख्याति सुनकर कुछ विदेशी वैज्ञानिक यह जानने के लिये कि "इनके अन्दर ऐसी कौन सी शक्ति काम कर रही है तथा सिद्धगुफा की मिट्टी में ऐसे कौन से तत्व हैं जिससे इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण कार्य हो रहे हैं ?" अपने वैज्ञानिक उपकरण लेकर उनके पास पहुँचे और उनके मस्तिष्क, हृदय आदि अंगों तथा गुफा की मिट्टी का परीक्षण किया। जब वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे तो योगिराज जी मुस्कराकर बोले- "लल्ला विशेषता मुझमें या मेरी इस गुफा की मिट्टी में कुछ भी नहीं है। विशेषता वाले तो हिमालय में बैठे हुए हैं उन्हीं की कृपा से ही सब कुछ हो रहा है। यदि हममें या इस गुफा की मिट्टी में कुछ विशेषता है भी तो उसे तुम्हारी ये निर्जीव मशीनें नहीं बता सकती।" यह सुनकर वे लोग निराश होकर लौट गये।

योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज के सैकड़ों शिष्य सिद्धकोटि के हैं जो कि उनके

अमोघ आशीर्वाद से हिमालय की कन्दराओं में समाधिस्थ है। बस्ती में रहने वाले उनके विशेष कृपापात्र शिष्यों में योगिराज श्रीश्याम बिहारी शुक्ल, योगिराज श्री रघुनन्दन प्रसाद (फिरोजाबाद वाले-दाढ़वाला) और संसार सिंह के नाम प्रमुख हैं। अब इन तीनों का ही शरीर शान्त हो चुका है।

श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जहाँ एक आदर्श शिष्य रहे हैं वहीं वे एक आदर्श गुरु भी हैं। उनके उज्ज्वल व्यक्तित्व में सद्गुरु और सद्शिष्य का अनूठा सम्मिश्रण रहा है। जहाँ एक ओर वे अपने गुरुदेव के प्रति समर्पित थे और उन्हें ही अपना सर्वस्व समझते थे वहीं दूसरी ओर अपने शिष्यों के प्रति उनका हृदय अगाध वात्सल्य एवं आत्मीयता के भावों से परिपूरित रहता था। वे अपने शिष्यों को अत्यन्त स्नेह से अपने हृदय से लगाकर पुचकारते हुए कहा करते थे- "लल्ला ! तुम तो मेरी आत्मा के टुकड़े हो।"

उपनिषदों में सद्गुरु के जो लक्षण बताये गये हैं उनमें अक्षरशः पाये जाते हैं जैसे-

आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः।
योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मको शुचिः।।
गुरु भक्ति समायुक्तो पुरुषज्ञो विशेषतः।
एवं लक्षण सम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात्-जो स्वयं आचार्य हो, वेदों का ज्ञाता हो, विष्णुभक्त हो, किसी से ईर्ष्या-द्वेष न रखता हो, योगविद्या में पारंगत हो, योग में दृढ़ निष्ठा वाला हो, योग परायण हो, पवित्र रहने वाला हो, अनन्य गुरु भक्त हो तथा जो परमात्मा का पूर्णरूपेण साक्षात्कार कर चुका हो इन सब उत्कृष्ट गुणों के कारण ही वह महापुरुष सद्गुरु कहलाता है। योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज अपने ध्यानाभ्यासी शिष्यों को कहीं श्री कृष्ण के रूप में, कहीं गणपति के रूप में, कहीं योगेश्वर प्रभु रामलाल के रूप में, और कहीं भगवान सदाशिव के रूप में दर्शन देते रहे हैं और अब भी वे इन्हीं रूपों में दर्शन देते रहते हैं। किन्तु व्यवहार काल में उन्होंने अपने आपको सदा छिपाये रखा। चाहे कोई उनका अन्तरंग ही क्यों न रहा हो वह भी उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाया। और वे एक कुशल कर्मयोगी की तरह आजीवन जन कल्याण में संलग्न रहे। जीवन के अन्तिम क्षण तक वे देश के कोने कोने में घूमकर जन-जन को आत्मकल्याण का सन्देश देते रहे।

२५ जून १९९० को २१ दिन के एकान्त वास के समापन के साथ ही ८३ वर्ष की आयु में उनकी आत्मज्योति प्रभु रामलाल जी की ज्योति में समा गई।

❋ ❋ ❋

वेदान्त और योग

(लेखक–डॉ० श्रीमहेन्द्रनाथ सरकार)

हिन्दुस्तान का जीवन और तत्वज्ञान सदा एक साथ रहा है। तत्वज्ञान का अर्थ हिन्दुस्तान में केवल 'पदार्थों को विचार दृष्टि से देखना' ही नहीं है। तत्व ज्ञान का वास्तविक अर्थ तो आत्म प्रकाश है। इसलिये हिन्दुस्तान के तत्ववेत्ता केवल सिद्धान्त का प्रतिपादन कर चुप नहीं रहते, किन्तु साथ ही ऐसी साधना भी बतलाते हैं जिससे आत्मबोध के जो अनेक स्तर हैं वे खुल जायें और अन्त में सत्य का साक्षात्कार हो। वेदान्त में इस विषय की समीक्षा विचारदृष्टि तथा अन्तर्दृष्टि दोनों से होती है। इसलिये यह एक 'दर्शन' भी है और साथ ही आत्मस्फूर्ति भी।

इसकी विचार दृष्टि में सविशेष ब्रह्म और निर्विशेष ब्रह्म दोनों एक चीज नहीं हैं; ब्रह्म एक ही है और वह निर्विशेष है; उस पर माया का जो विश्व प्रपञ्च दीखता है वह केवल भ्रम है। अद्वैत वेदान्त का कोई भी साधक तब तक सन्तुष्ट नहीं हो सकता जब तक उसे 'तत्वमसि' महावाक्य का साक्षात् अनुभव न हो। इस सत्य के अनुभव करने का सर्वोत्तम मार्ग यही है कि बुद्धि इतनी निर्मल और ज्ञानप्रवण हो जाय कि वह सदसत् या नित्यानित्य के भेद को अनुभव कर सके। वेदान्त की साधना मुख्यतया ज्ञान साधन है, जिसके अभ्यास से धीरे–धीरे वह बोध होता है जिससे सब पदार्थ एक ही सनातन सत्ता में दीख पड़ते हैं। वेदान्त की मुख्य साधना 'दृश्यमार्जन' है अर्थात् पदार्थों और उनके रूपों को नित्यानित्य वस्तु विवेक से देखकर सत् को असत् से अलग करना। इस व्यतिरेक–क्रम से साधक को सबके आधारभूत एक ही सत् की सत्ता का साक्षात्कार हो सकता है।

वेदान्त के मननादिरूप के अभ्यास से ऐसी विचारप्रणाली बँधती है और मन को ऐसा अभ्यास पड़ जाता है कि पीछे सदसत् का ज्ञान (विचार की अपेक्षा न रख) अपने–आप ही होने लगता है और सत् की जो सर्वत्र व्याप्त समसत्ता है वह अनुभूत होती है। वेदान्त दार्शनिक सिद्धान्त के नाते सत् के साथ नामरूपात्मक जगत् का समन्वय नहीं साध सका है, क्योंकि इसका सिद्धान्त ही यह है कि नाम रूपात्मक जगत् ब्रह्म पर आरोपित एक मानसिक व्यापार मात्र है, यथार्थ में ब्रह्म में उसकी कोई सत्ता नहीं है। कारण में कार्य न होने की बात को वेदान्त परमार्थतः नहीं स्वीकार करता, यद्यपि यह मानी हुई बात है कि कारण ही कार्य के रूप में भासता है।

सामान्य सांसारिक बुद्धि में यह नामरूपात्मक जगत् सत्य है। इसलिये वेदान्त सृष्टि रचना का क्रम बतलाते हुए, माया और ईश्वर इन दो तत्वों को मानकर चलता है। माया को ब्रह्म का व्यष्टि तत्व माना है। इस व्यष्टि तत्व की सत्ता अवश्य ही वैसी नहीं है जैसी कि ब्रह्म की सत्ता। वेदान्त का विचार इस प्रकार है कि मनुष्य की बुद्धि को जब यह तत्वजिज्ञासा होती है कि इस दृश्य जगत् का कारण क्या है, तब उसे कारण के लिये मूल सत्ता की ही भावना करनी पड़ती है। यह मूल सत्ता अवश्य ही ऐसी सत्ता है जिसमें इस नामरूपात्मक विश्व की विविध रचना के लिये किञ्चित् भी कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। व्यष्टितत्व केवल माया में कल्पित है।

परब्रह्म के अन्दर अपने आपको परिच्छिन्न और परिवृत करने वाला जो तत्व है उसे माया कहते हैं। मानो ब्रह्म अपने संकल्प और सृष्टिक्रम में अपने आपको बाँधता है। पर यह केवल प्रतीत होता है, ऐसा है नहीं।

इस ज्ञान के आधार पर वेदान्त की साधना प्रतिष्ठित है, इस कारण इसमें दृश्य जगत् से विरक्त का भाव धारण करना स्वाभाविक ही हो गया है। वेदान्त में जीवन को प्रापञ्चिक और पारमार्थिक दोनों ही रूपों में साधा जाता है और यद्यपि प्रापञ्चिक सत्ता वेदान्त ने अस्वीकार की है तथापि उसके व्यावहारिक उपयोग को उसने ग्रहण किया है। इसी दृष्टि से वेदान्त ने जीवन में तथा आत्मानुभूति के क्षेत्र में भी एक नया रास्ता निकाला है—तत्वतः स्थान पर पहुँचने के पश्चात अवश्य ही इस रास्ते का कुछ महत्व नहीं रह जाता। बात यह है कि वेदान्त का वास्तविक कार्य चैतन्य को अज्ञान से मुक्त कर देना है, पर मुक्ति भी क्रमशः होती है, पहले साधक के जीवन में ऐसी शुद्धता और सूक्ष्मता आती है जो सामान्य सांसारिक जीवन में नहीं होती। वेदान्त में आध्यात्मिक जीवन के दो भाग किये जा सकते हैं—एक अध्यात्ममूलक व्यावहारिक साधन और दूसरा आध्यात्मिक परागति। पूर्वोक्त साधन करते हुए चित्त शुद्ध और बुद्धिबोधशक्ति सूक्ष्म होती है। यह साधनावस्था देहाभिमानी अबोध प्राकृत जीवन की अपेक्षा उन्नत जीवन है। यह दिव्य जीवन है, क्योंकि इसमें क्रमशः उन शुभ वृत्तियों का उदय होता है जो अज्ञान से दबी रहती हैं और जीवन में स्वच्छता और पवित्रता का आनन्द आता है; यहाँ साधना में तो क्रमविकास हो रहा है, पर इस हालत में भी लक्ष्य वही निर्गुण ब्रह्म है जिसमें कोई विकार नहीं होता। यह विकास अवश्य ही अधिक सूक्ष्म है, क्योंकि इसमें दैवी वृत्तियाँ उदय होती हैं और विकास क्रम में यह ऊँची चढ़ाई है, तथापि जीवन का सूत्र जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वही एक ही चला आता है और इस कारण द्विधाविभक्त बोध के बोझ से जीवन दब जाता है।

वेदान्त में आत्मानुभव के दो मार्ग हैं– (१) प्रत्यक्ष, और (२) अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष मार्ग है नित्यानित्य वस्तु विवेक। इसका ऐसा अभ्यास हो कि छोटी–छोटी बातों में भी मन विवेक से च्युत न हो और प्रत्येक पदार्थ में उसी अविकार्य सत् को ढूँढें।

परन्तु प्रत्येक पदार्थ में सत् को ढूँढने की इस वृत्ति से बाह्य पदार्थों की सत्ता का लोप हो सकता है और पदार्थ मात्र के मूल में अव्यय चैतन्य प्रकट हो सकता है।

इस प्रकार दृश्यमार्जन की पद्धति से जैसे पृथक् सत्ता सी प्रतीत होने वाली अनात्म प्रकृति के रूप में भासने वाला बाह्य अन्तराय नष्ट हो जाता है, वैसे ही आभ्यन्तर प्रकृति (मन–बुद्धि आदि) के अबाधित निरीक्षण–क्रम से उसकी भी अनित्यता और क्षण–क्षण में पलटने की वृत्ति प्रकट हो जाती है। यह भ्रम भी दूर हो जाता है कि हमारी चेतनप्रकृति स्वभाव से गतिशील है।

वेदान्त ने हमारी आन्तर प्रकृति और हमारे चित्स्वरूप में भेद बताया है। मनुष्य का अन्तःकरण चित्तस्वरूप को प्रतिबिम्बित करता और प्रकाशयुक्त देख पड़ता है, पर यह आत्मा की अन्तःकरण पर पड़ी हुई केवल छाया है।

यहाँ भी, वेदान्त में विचारणा के द्वारा आन्तर प्रकृति के चक्करों में से बाहर निकलकर अन्तर्हित आत्मा को पुनः प्राप्त करना होता है। इसके लिये चेतन प्रकृति के केन्द्र स्थान में अर्थात् उस कालातीत सत्ता में जो आन्तर प्रकृति की अप्रतिहत सतत गति में सदा स्थिर और अ–व्यवहित रहती है, दृष्टि को एकाग्र करना पड़ता है। आन्तर प्रकृति की विकृतियों को इस प्रकार देखने का जो अभ्यास है उससे दृष्टि विशाल होती है और क्रमशः अन्त साक्षी का साक्षात्कार होता है। यह अन्त साक्षी शान्तिस्वरूप है और मन, बुद्धि, अहंकार की वृत्तियों के खेल का दृष्टा है। यह द्रष्टा है, नैयायिकों का कर्ता नहीं; यह मोक्ष स्वरूप है, काल और कालावच्छिन्न आन्तर प्रकृति से सर्वथा मुक्त।

द्रष्टा गुणी या कर्मी नहीं है, उसमें गुण और कर्म होने का मतलब तो यह होगा कि उसका द्रष्टव्य और कर्तव्य अन्तःकरण में आबद्ध है। यह मोक्षस्वरूप है, वैसा कर्ता नहीं जो अन्तःकरण में अपना प्रतिबिम्ब डाले, उसे प्रकाशित करे, अभिप्राय व्यक्त करे अथवा किसी प्रकार का भी कोई काम करे। द्रष्टा के इस मुक्तस्वरूप को श्रीमत्शंकराचार्य ने पहचाना, कैंट आदि नहीं पहचान सके।

मोक्ष स्वरूप द्रष्टृतत्व ही आध्यात्मिक और पारमार्थिक अनुभूति की पराकाष्ठा है। इस अनुभूति में जीव और ईश्वर, हृत्पुरुष और विराट् पुरुष इस प्रकार का कोई भेद नहीं रह

जाता। कारण, यथार्थ में वेदान्त का तत्त्वमसि महावाक्य किसी प्रकार का समन्वय नहीं है, बल्कि वह परा स्थिति है जिसमें भेद या समन्वय का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। अतः वास्तविक वेदान्तिक साधना इसी परम बोध को प्राप्त होने का प्रयास है। जहाँ ये सामान्य संकुचित भेद ज्ञान नहीं रह पाते।

वेदान्त की साधना इसी ज्ञान-धारणा पर निर्भर करती है कि अनेकतत्व जो कुछ देखने में आता है वह सब मिथ्या है और चिन्मय ब्रह्म का जीव या ईश्वररूप में घनीभूत होकर कर्म करना भी मिथ्या है और अद्वितीय सत्य केवल वही परब्रह्म है जो इन सबके परे है। सविशेष और निर्विशेष ब्रह्म के इस भेद को जानना और सविशेष को अनित्य और मिथ्या मानना वास्तविक ज्ञान का आरम्भ है। पर सविशेष को केवल अनित्य मानने से पूरा काम नहीं होता, इसके साथ इसके परे जो अद्वितीय सत्य है उसकी खोज होनी चाहिये। इससे उस चैतन्य के कपाट खुलते है जो न क्रियं है न अक्रिय, मन और वाणी से जिसका वर्णन ही नहीं हो पाता।

ऐसी साधना और ऐसी अनुभूति उन उदार आत्माओं से ही बन पड़ती है जिन्होंने इस्वर वैराग्यसाधन किया है और बोधशक्ति को तुरीय भान खोल दिया है।

इस बोध को प्राप्त होने की अवस्था पहले तर्क से जानी जा सकती है, पर है यह यथार्थ में मन की साधना। वस्तु जब प्रत्यक्ष या समीप होती है तभी विश्वास की पूर्णता होती है। इसका मतलब है कि इस वेदान्त-सिद्धान्त का सतत मनन और निदिध्यासन हो। इससे वृत्ति ब्रह्माकार होती है और मन और अहंकार की दुस्तर माया को तर जाने में मदद मिलती है और मन अन्तर्मुख होकर जीवन के उस क्षेत्र मे प्रवेश करता है जो देशकाल के परे है। **वेदान्त में योग का माहात्म्य यही है।**

योग शब्द के अनेक अर्थ और रूप है, पर इसका जो सर्वसम्मत अर्थ है वह चैतन्य के विविध स्तरों का खुलना ही है। और योग का लक्ष्य प्राय: आत्मा की विज्ञानमय स्थिति पर पड़े हुए आवरण को हटाना, चित्त को अधिकाधिक चिन्मय बनाना और दिव्यजीवन के आनन्दमय प्राणस्वरूप को अपने अन्दर अनुभव करना होता है। विज्ञानमय जीवन का जो विस्तृत क्षेत्र है, जो विविध ब्रह्माण्डों में तरतम भाव से प्रकट हुआ है, जीव उसी क्षेत्र में पहुँचने की इच्छा करता है। योग से दिव्य जीवन का सूत्र हाथ में आता है और जीव भगवत्सत्ता के साथ सम्पूर्ण रूप में मिलना चाहता है।

यह मार्ग अप्रत्यक्ष है; क्योंकि यह सान्त साकार चैतन्य को आधारभूमि के तौर पर ग्रहण करने का एकबारगी निषेध नहीं करता। पर इसका लक्ष्य क्रमशः सान्त जीवन में

अनन्त जीवन को भरता और सान्त चिन्मय सत्ता को अनन्त की वृत्ति, शक्ति और झप्ति में मिला देना ही है। जो लोग उपासनामार्गी हैं और अपर ब्रह्म का ध्यान करते हैं उन्हें सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार होता ही है।

इस योग का वास्तविक स्वरूप एकनेताद्वितीय ब्रह्म के सगुण रूप का एकाग्रध्यान और उसी में मिलना है। यह मिलन अन्तःकरण में होता है और तब शान्ति और शक्ति का उदय होता है। पर इसमें साधन की मुख्य और गुप्त बात यह है कि हमारे स्थूल शरीर और स्थूल प्राण हमारे वश में हों और सूक्ष्म प्राण और सूक्ष्म अन्तःकरण के साथ अपने जीवन का अभेद-सम्बन्ध हो।

जब हमारी प्रकृति की जड़ता दूर होगी तब सगुण ब्रह्म की सूक्ष्म जीवन धाराओं की अनुभूति होगी। पर इस मार्ग की परिसमाप्ति तब होती है जब अन्तःकरण में सगुण ब्रह्म का, केवल जब कभी नहीं बल्कि, सतत अनुभव हो। जिनको ऐसा सतत अनुभव होता है उनमें प्रचण्ड शक्ति और अगाध ज्ञान होता है, क्योंकि सगुण ब्रह्म के साथ उनका जीवनसूत्र इस तरह मिला हुआ होता है कि ईश्वरीय कार्यों की उन्हें स्पष्ट सूचना मिलती रहती है और विश्व जीवन की गति के साथ-साथ उनके पैर पड़ा करते हैं।

यह जो सगुण-साधक योग है उससे ईश्वरप्रीत्यर्थ कर्म करने की वृत्ति अत्यन्त प्रबल होती है और वह सायुज्य मुक्ति के साधन के लिये साधक को तैयार करती है।

वेदान्त के इस योग में जीव और शिव की एकरूपता होती है वह एकरूपता केवल परात्पर ब्रह्म की स्थिति में ही नहीं होती-परात्पर ब्रह्म के साथ एकरूप होना तो इस योग की परिसमाप्ति ही है-बल्कि त्रिगुणात्मक जगत्कर्म में भी ईश्वर के साथ जीव एकरूप होता है और यह यों होता है कि वेदान्त में व्यवहारतः जीव और ईश्वर में भेद है, परमार्थतः नहीं है। इस तरह मनुष्य की इच्छा और ईश्वर की इच्छा और ईश्वर की इच्छा के योग का विधान है। वेदान्त की साधना में योग के इस अंग पर जो अधिक ध्यान दिया-दिलाया जाता है, इसका कारण यह है कि मोक्ष का ध्यान मुख्य होने से इसका ध्यान दब-सा गया है।

ईश्वर और जीव की इच्छा के एक होने का अर्थ तो वास्तव में यही है कि मनुष्य की इच्छा ईश्वरेच्छा के पूर्ण शरणागत हो, पर यह शरणागति जो कुछ होता है, होने दो' ऐसा मानकर चुप पड़े रहने की स्थिति नहीं है, बल्कि अपनी इच्छा को नये साँचे में ढालना है और अपनी वृत्ति को विश्व की गति के साथ मिलाना है। इस प्रकार मनुष्य का चित्त अकार और नमकार की सीमा तोड़कर अन्त में अपने परमात्मस्वरूप को अनुभव करता है।

तब वह विधि–निषेधरूप कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है और उस लोक में प्रवेश करता है जहाँ उसका व्यष्टि–अहंकार और ममकार पीछे छूट जाता है। वेदान्त के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की चित्तवृत्ति इतनी विशाल हो सकती है कि उसमें अहता–ममता कुछ रह ही न जाय। चित्त का वास्तविक मोक्ष यही है, क्योंकि इसी से उसको अपने स्वच्छन्द, विश्वव्याप्त और विधिनिषेधातीत तथा निरहंकार स्वरूप का बोध होता है।

यही चित्त का मोक्ष है, क्योंकि यही चित्त को सब प्रकार की सीमाओं से मुक्त कर देता है। पर यह मोक्ष वह मोक्ष नहीं है जो परात्पर ब्रह्म के साक्षात्कार से प्राप्त होता है। यह केवल चित्तवृत्ति का स्वातन्त्र्य है, और वह आत्मा का स्वातन्त्र्य है। वेदान्त आत्मस्वातन्त्र्य को ही उच्चतर स्थिति मानता है, जिसमें ध्याता–ध्यान–ध्येय की त्रिपुटी समाप्त हो जाती है।

इस सगुण ब्रह्म के साथ एकात्मता होने से अहता–ममतारूप सत्ता बदलकर सत्ता का कुछ दूसरा ही स्वरूप हो जाता है और अपनी ससीमता का ध्यान ही नहीं रहता। यद्यपि पूर्व के संस्कार इस अवस्था में भी उठकर अहंकार को समवस्थित करने में सचेष्ट होते हैं तथापि सगुण ब्रह्म के साथ एकात्मता का जो भाव है वह अहंभाव से क्रमशः मुक्ति दिलाने वाला है। और उससे अन्तःकरण का इस प्रकार पूर्ण परिवर्तन होने से बाह्य जगत् के अनुभव करने का प्रकार भी बदल जाता है। फिर व्यक्तिगत या व्यष्टिगत स्वरूप में रमना नहीं होता, अव्यक्त अनन्त की अनुभूति होने लगती है।

यह मानना कि पृथक् मन और अहंकार के बिना कोई प्रतीति नहीं हो सकती, गलत है। प्रतीति–अनुभूति–बोध को अहंकार की विमूढ़ता से मुक्त करना ही वेदान्त सिखाता है।

इस मुक्ति के बिना चित्तवृत्ति या इच्छा का मोक्ष नहीं हो सकता, क्योंकि बोधशक्ति और चित्तवृत्ति का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। दोनों एक ही साथ ही रहती हैं। इस प्रकार वैयक्तिक मनोगत इच्छा या संकल्प से मुक्त होकर ही साधक विश्वात्मा और विश्वसंकल्प को साक्षात् करके विश्व बोध के आनन्द को प्राप्त होता है।

बोधशक्ति और चित्तवृत्ति को इस प्रकार नियत करने से इतना ही होता है कि मुक्ति का आस्वाद मिलने से आगे बढ़ने को जी चाहता है–इससे यह नहीं होता कि त्रिगुण की वृत्तियों से पूर्ण मोक्ष मिल जाय। कारण, यह भी साधन की अवस्था है–चेष्टा है और चेष्टा चाहे कितनी भी स्वयं स्फूर्त हो वह बद्धता का ही लक्षण है–मुक्त आत्मस्वरूप नहीं। इसलिये वेदान्त का अन्तिम लक्ष्य इस सगुण की अवस्था के परे पहुँचना है। यह तब हो सकता है जब हम विश्वात्मा बोध से क्रमशः ऊपर उठकर उस परम भाव को प्राप्त हों, जहाँ

कोई इच्छा नहीं है, केवल एक अद्वितीय परमात्म सत्ता है—वहाँ कोई चेष्टा नहीं है, न फल पाने का कोई सुख है, प्रत्युत एक ऐसा आनन्द है जो चिन्मय है।

पूर्व साधना से चित्तवृत्ति उन्नत, उदार और विशाल होती है, और उत्तर साधना से परा सत्ता—परम भाव का बोध होता है, उसे कार्यरूप में व्यक्त होने के लिये किसी—न—किसी माध्यम की आवश्यकता होती है और माया की इस आड के कारण अद्वितीय ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो सकता। इसलिये वेदान्त में योग का वास्तविक परम अर्थ वह साधन है जिससे देशकालाद्यनवच्छिन्न नित्य—शुद्ध—बुद्ध—मुक्तस्वभाव परमात्म चैतन्य में चित्त लग जाय—पूर्वसाधना में चैतन्य का जो देशकालावच्छिन्न परिचित—अभ्यस्त व्यक्त रूप है उससे चित्त मुक्त हो, क्योंकि देशकालावच्छिन्नता ही यहाँ बद्धता है। कैंट के 'विशुद्ध तर्कवाद (Pure reason) में बुद्धि की विषयातीत सत्ता होने से उसमें देशकाल से स्वतन्त्र स्वतः सिद्ध बुद्धि के साथ बाह्य जगत् के तदनुरूप होने वाले बोध की समन्वित एकता साधित हो सकती है, पर यह जो बाह्य जगत का बोध है वह तो देशकाल से परिच्छिन्न ही है, उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं।

वेदान्त ने उस चिन्मय ब्रह्म का पता पाया है जो देशकाल के परे है। वह गुणवृत्तियों से सर्वथा स्वतन्त्र और देशकाल से अनवच्छिन्न होने के कारण कैवल्यस्वरूप है। वेदान्त का यह विशिष्ट अनुभव है। योग अन्तःकरण की ग्रन्थियों को भेदने और ज्ञान के भिन्न—भिन्न स्तरों को खोलने की कला है और वेदान्त की विशिष्ट योग साधना देशकालाद्यनवच्छिन्न चिन्मय ब्रह्म को पाना है। यह मोक्ष आत्मा को सगुण रूप से नहीं प्राप्त होता, निर्गुण परमभाव के साक्षात्कार से होता है। कारण, सगुण देशकालपरिच्छिन्न है और परम भाव में ऐसी कोई परिच्छिन्नता नहीं। काल की परिच्छिन्नता को हटाकर चिन्मय ब्रह्म को पाना ही मोक्ष का परम साधन है। यही वेदान्तिक योग या ज्ञानयोग की मूल भित्ति है।

***

दौलत पाय न कीजिए, सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को, ठांव न रहत निदान।।

—*गिरधर कवि*

जीवन-यात्रा की परम साधना

श्री शिवानन्द

(जीवन एक यात्रा है और यात्रा के निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचने के लिये जिसे साधना की आवश्यकता है, उसी का उल्लेख विद्वान् लेखक ने अपने इस लेख में किया है, जिसे हम उनकी सुकृति 'जीवन और सुख' से यहाँ साभार दे रहे हैं। सं० सम्पादक)

इस संसार में जन्म से लेकर मरणपर्यन्त जीवन की एक यात्रा होती है, किन्तु मरण जीवन–यात्रा का लक्ष्य नहीं है। जीव का लक्ष्य कैवल्य प्राप्ति है। दुःखों से आत्यन्तिक विमुक्ति एवं परम आनन्द की प्राप्ति साध्य है, लक्ष्य है। साधक को इस साध्य प्राप्ति के हेतु कोई साधना करनी चाहिए, कुछ साधन अपनाने चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति मील के पत्थर के चारों ओर ही चक्कर लगाता रहे तो वह दस वर्षों तक चलकर भी वहीं रह जायेगा, किन्तु जो व्यक्ति मन्दगति से भी आगे की ओर बढ़ता जायेगा, वह अवश्य ही कुछ मंजिल पार कर लेगा। अतएव दुःखों से मुक्त होने के लिए चैतन्यस्वरूप आत्मा में सहजभाव से संस्थित होने के लिए, हमें कुछ साधना, कुछ प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिए। बाह्य ज्ञान लोक–जीवन के लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है, किन्तु आत्म–ज्ञान के बिना वह व्यर्थ ही नहीं घातक सिद्ध हो सकता है। आत्म–कल्याण के लिए आत्म–ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। खेद है कि हम बहिर्जगत के ज्ञान की खोज में अपना समस्त समय एवं शक्ति लगा देते हैं, किन्तु आत्म–ज्ञान की अवहेलना कर देते हैं। मैं कौन हूँ–यह जानने का प्रयत्न ही जीवन–यात्रा की परम साधना है। जीवन–यात्रा की आयु की दृष्टि से लम्बा करने की अपेक्षा उसे सुधारना अथवा चमकाना अधिक महत्वपूर्ण होता है।

दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति के हेतु निवृत्ति मार्ग को ही ग्रहण करना अभीष्ट है। जब मिट्टी का एक कण भी मेरा नहीं है, मेरा हो भी नहीं सकता है तथा मेरा अपना तो शरीर भी नहीं है, तब व्यर्थ ही क्यों मैं किसी के साथ मोहलिप्त रहूँ ? इस मोह–बन्धन से छूटना ही निवृत्ति है। मैं चैतन्य–स्वरूप हूँ, आनन्द–स्वरूप हूँ मैं अखण्ड, अभेद्य, अजर–अमर हूँ मैं आत्मा हूँ, मैं जड़ शरीर नहीं हूँ। जीव इन्द्रियों के द्वारा बाह्य विषयों के सम्पर्क में आकर अपने वासना–विकार एवं कषाय के कारण उन्हें अपना मान लेता है जो एक भ्रम है, अज्ञान है। इस संसार में सारे दुःख ही मोह के कारण उत्पन्न होते हैं–**'मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।'** अतः त्याग से ही साधक का मार्ग प्रशस्त होगा। परिग्रह से त्याग की ओर, भोग से सेवा की ओर, संकीर्णता से उदारता की ओर, मोह से व्यापक प्रेम की ओर बढ़ता श्रेयस्कर है।

किन्तु गृहस्थजन किसका त्याग करें ? व्यापार, धन आदि का पूर्ण त्याग करने पर तो गृहस्थ नहीं चल सकेगा। व्यापार, धनार्जन छोड़कर बच्चों का पालन, जीवन–निर्वाह

कर्तव्य–पालन करना भी सम्भव नहीं है। गृहस्थ के लिए तो प्रवृत्ति–मार्ग की भी आवश्यकता प्रतीत होती है। भोगों का पूर्ण परित्याग तो अव्यवहारिक है, किन्तु धीरे–धीरे भोगवृत्ति का शमन होना अपने सुख और शांति के लिए आवश्यक है। भोग्य वस्तुओं का आकर्षण बुद्धि का अपहरण कर लेता है और सोचने की क्षमता को नष्ट कर देता है। भोगों की इच्छा का शमन (न कि बलपूर्वक दमन) होना परम आवश्यक है। कभी–कभी तो तृप्ति पर्यन्त इच्छापूर्ति करना, किन्तु विवेक की आँखें खोलकर आवश्यक हो जाता है। कामपूर्ति होने पर भी तृप्ति न होना तृष्णा है। काम–शमन ही काम–परित्याग है। नदी को पार करने के लिए नौका की आवश्यकता है तथा पार जाने पर नौका को छोड़ देना ही श्रेयस्कर है, यह प्रवृत्ति द्वारा निवृत्ति का उदाहरण है। भोगों में से गुजरना कभी–कभी तथाकथित पापों में से भी अनुभव दृष्टि से आखें खोलते हुए गुजरना तृप्ति के द्वारा भोग के खोखलेपन को सिद्ध कर देता है। धनार्जन के हेतु वैध पुरुषार्थ करना गृहस्थ का कर्तव्य है, किन्तु प्रवृत्ति–मार्ग के साथ उससे चिपकना नहीं चाहिए। प्रवृत्ति–मार्ग में रहकर भी निवृत्ति–मार्ग को ही श्रेयस्कर मानना चाहिए। अतः प्रवृत्ति में धीरे–धीरे निवृत्ति को ग्रहण करना, यह सन्तुलित स्थिति है।

प्रवृत्ति–मार्ग में अनेक प्रलोभन आते हैं–पद, सत्ता, प्रतिष्ठा, धन, वैभव तथा उनके कारण प्राप्य विशेष मान, लोक–ख्याति, इत्यादि प्रबल आकर्षण होते हैं। मनुष्य में अनेक प्रकार की इच्छा, महत्वाकांक्षा जाग उठती है और मनुष्य एक दुर्भेद्य कुचक्र में फँसकर उसी में विनष्ट हो जाता है। कोई एक विवेकशील व्यक्ति ही कभी ऐसे लगने पर भौतिक जीवन के खोखलेपन और भौतिक क्रियाकलाप की निरर्थकता को समझ कर अपने को मृग–मरीचिका से निकालकर मुक्त हो पाता है।

विवेकशील व्यक्ति के लिए विषाद (सांसारिक सम्बन्धों एवं वस्तुओं की निस्सारता से उत्पन्न विषाद) एक योग (प्रभु से जुड़ने का माध्यम) होता है। अर्जुन का विषाद विषाद योग हो गया। संसार के नाते स्वार्थमय और मिथ्या होते हैं, जिनमें भरपूर दिखावट, मिलावट होती है। संकट आने पर मनुष्य अकेला खड़ा रह जाता है। एक ओर धन–सम्पत्ति के प्रश्न पर सगे–सम्बन्धी घोर शत्रु बन जाते हैं तथा दूसरी ओर आधि, व्याधि, मृत्यु, वस्तु–नाश, आपत्ति आने पर स्वजन सहायता निरुपयोगी सिद्ध हो जाती है। ये घटनायें मनुष्य की कृतघ्नता अथवा उनकी असहायता हृदय की आँखें खोलने के लिए होती हैं। अन्तोगत्वा प्रभु ही एकमात्र सच्चा साथी है तथा समर्थ सहायक है–ऐसा समझकर प्रभु से जुड़ जाने पर विषाद भी एक योग हो जाता है। सांसारिक नातों का निर्वाह करते हुए सबके प्रति कर्तव्य का पालन करते हुए प्रभु को सच्चा साथी मान कर उसके साथ जुड़े रहना चाहिए। यह स्वस्थ वैराग्य भाव है। भयानक रोग तथा मृत्यु होने पर विपुल धन तथा भौतिक वैभव की निस्सारता एवं अनुपादेयता क्षणभर में स्पष्ट हो जाती है। प्राणांत होने पर सब कुछ यहीं छूट जाता है। अतः हम

सांसारिक वस्तुओं के स्वामी भी नहीं हो सकते हैं, केवल अमानतदार हो सकते हैं। संसार और उसकी वस्तुओं को अपना मानने से क्लेश ही उत्पन्न होता है। शेखशादी ने संसार को भटियारिक की सराय ही कहा है। अतएव मनीषीजन कहते हैं कि भौतिक वस्तुओं के संग्रह एवं रक्षण के लिए कदापि पाप न करें और न उन्हें पाकर ही पाप करें। संसार में रहकर सांसारिक वस्तुओं का उपभोग तो करें, किन्तु उनमें फँसें नहीं। धन कमाना क्लेशप्रद है। धन घोड़े के सदृश है। हम घोड़े पर चढ़कर लक्ष्य की ओर बढ़ें और घोड़े का सदुपयोग करें किन्तु यदि घोड़ा हमारी कमर पर चढ़ बैठेगा तो हमें चकनाचूर कर देगा। संसार से ऊबकर अथवा घबराकर न भागना है न फँसकर भटक जाना है। प्रवृत्ति होते हुए भी निवृत्ति की ओर उन्मुख होना है। व्यवहार जगत में प्रवृत्ति होते हुए भी मानसिक स्तर पर निवृत्ति की ओर बढ़ने से स्वस्थ अनासक्ति का उदय होता है।

निवृत्ति–मार्ग कठिन है और प्रवृत्ति–मार्ग सरल है। प्रारंभ में ही गृहस्थजन को निवृत्ति मार्ग का पाठ सुपाच्य नहीं होता है। छोटे बच्चों को पौष्टिक पदार्थ अपाच्य होता है, अतः उसे जलमिश्रित दूध, हल्का दूध देते हैं जो सुपाच्य होता है। जैसे धीरे–धीरे बल बढ़ने पर ही पौष्टिक पदार्थ का सेवन शरीर के लिए आवश्यक होता है, ऐसे ही गृहस्थ में रहकर धीरे–धीरे तत्त्व ज्ञानपूर्वक अपरिग्रह का वरण करना आवश्यक है। सन्यास तो ले लिया और मन में संसार बसा है तो वह निवृत्ति में भी प्रवृत्ति है जो नित्य है। गृहस्थ में रहते हुए अलिप्त रहना, अनासक्त होकर व्यवहार करना प्रवृत्ति में निवृत्ति है। घर में रहकर भी निर्लेप रहना श्लाघनीय है। भोगों में से गुजरना तो अनुभव–परिपक्वता एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक तथा अभीष्ट है, किन्तु भोगों में डूब जाना आत्म–विनाश ही है। गृहस्थ में प्रवृत्ति और निवृत्ति (भोगमार्ग और त्यागमार्ग) का समन्वय करना उचित होता है। पूर्ण निवृत्ति सन्यासी के लिए उचित है। गृहस्थ के लिए एक गृहस्थ ही आदर्श होता है तथा सन्यासी के लिए एक सन्यासी। गृहस्थ का परिपाक होने पर ही सन्यास लेना (पूर्ण त्याग) उचित होता है। गृहस्थ जीवन में इच्छाओं के त्याग का अर्थ आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयत्न का त्याग कदापि नहीं है।

प्रारम्भ में प्रवृत्ति–मार्ग ग्रहण करने पर ही निवृत्ति–मार्ग की ओर बढ़ सकते हैं। प्रवृत्ति में भी निवृत्ति का ग्रहण करके साधक ऐसा अलिप्त रह सकता है जैसे कि जल में रहकर भी कमल उससे अलिप्त रहता है। सांसारिक भोग्य–पदार्थों के मध्य रहकर भी मनुष्य को उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए, जैसे कि मीठे हलुए के बीच में रहकर चम्मच भी उसके स्वाद से अलिप्त रहता है। यदि अपरिपक्व रहकर सन्यास ले लिया और पर्वत–कन्दरा में जा बैठे, किन्तु संसार के सुखों का स्मरण हो रहा हो, तो वह सन्यास में भी गृहस्थ है। दूसरी ओर घर में बैठे हैं तथा सांसारिक कार्य में संलग्न हैं, किन्तु उनके सर्वथा अलिप्त हैं, तो वह गृहस्थ में ही सन्यास है जो धन्य है।

***

गुरुदेव के संस्मरण

जगदीश राय बंसल "अधम" D.C.M. गोहाना मंडी

श्री पुष्कर दत्त शर्मा से, जिनको स्थानीय भाषा में प्रेम से दादा पोहकर के नाम से भी जाना जाता है, सभी गुरु भाई बहिन भली भाँति परिचित होंगे। आदरणीय भाई श्री शर्मा जी गांव धनाना जि० सोनीपत के रहने वाले हैं। जहाँ पर हमारे आपके भाग्य विधाता गुरुदेव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपनी बुआ जी के घर जाते रहते थे। कभी-कभी महीना भर भी रह लेते थे। अतः प० पुष्कर जी लगभग १२ वर्ष की आयु से ही सर्व समर्थ के सम्पर्क में आ गए थे। तब से आज तक एकनिष्ठ गुरु सेवा में रत हैं। वर्तमान में गुरु जन्म भूमि अलुपुर धाम (पानीपत) आश्रम में निष्काम सेवा कर रहे हैं। अलुपुर से रोहतक अपने सुपुत्र ऋषिराम के पास आते-जाते कभी-कभी गोहाना वालों को भी निहाल कर जाते हैं।

आराध्यदेव सद्गुरु देव जी की, गुरु भाई पुष्कर जी पर अनन्त कृपाएँ हैं। जो समय-समय पर सिद्ध योग पत्रिका एवं श्री दासलाल जी महाराज द्वारा प्रकाशित गुरु ग्रंथों में पढ़ने को मिलती रहती हैं। इसी प्रकार का एक संस्मरण दादा पोहकर भल्ल जी से इस अधम को भी सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करना समीचीन होगा। मेरी योग्यता का अभाव देखते हुए एवं श्री गुरुदेव भगवान का तोतली बोली बोलता कृपा पात्र शिष्य समझ कर त्रुटियां क्षमा करेंगे।

बात सन् १९५७ की है। तब मेरी उम्र २५ वर्ष की रही होगी। हमारे गांव धनाना से हम ३०-३५ आदमियों के समूह में हरिद्वार से कावड़ लेने गए। वहां हमने पंजाब सिंध क्षेत्र-भीम गोडा में ठहर कर जहाँ-तहाँ मन्दिरों के दर्शन एवं गंगा स्नान का लाभ लिया। फिर निर्धारित तिथी को दिन में लगभग दो बजे गंगा स्नान के पश्चात, कावड़ उठाकर अपने लक्ष्य पर रवाना हो गए। हमारे साथ ३०-४० आदमियों का एक दूसरा ग्रुप भी चल रहा था। ये सभी अपने गांव के ही जाने पहचाने थे।

हरिद्वार से चलने के तीसरे दिन मुझे तीव्र ज्वर पीड़ा हो गई। चला नहीं जाता था। सर्दी लग रही थी। व्याकुलता और पीड़ा से असहाय हो रहा था। जैसे तैसे निकट स्थान कैराना पहुँच गए। मैं अपना कपड़ा ओढ़कर अचेत सा लेट गया। उन दिनों कावड़ियों के लिए कैम्प नहीं लगते थे। इधर-उधर खाने की हमारी किसी की इच्छा नहीं थी अतः दो

आदमी बाजार से राशन लेने चले गए।

जब मैं बुखार में लेटा हुआ था तो सर्व समर्थ, योग योगेश्वर अनन्त श्री सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की आवाज सुनाई दी—"पोहकर ! क्या बात है ?" मैंने कहा—गुरु जी बुखार हो गया। गुरु जी पुनः बोले, "ला दिखा !" मैंने कपड़ा ज्यों का त्यों ओढ़े—ओढ़े अपना एक हाथ कपड़े से बाहर निकाल दिया। हमारे आपके भाग्य विधाता ने हाथ लगा कर देखा और बोले, "ठीक हो जाएगा, घबराना नहीं, प्रभु जी सब ठीक करेंगे। और देखो, मैंने तुम्हारे भोजन बनवाने की व्यवस्था कर दी है। यह देखो उत्तर दिशा में यह जो चार दिवारी देख रहे हो, यहाँ भोजन के लिए कह दिया है, बनवा लेना। अब मैं जाता हूँ।" जब गुरुदेव भगवान जी उपरोक्त बातें समझा रहे थे, तब मैं बतलाया हुआ स्थान स्पष्ट देख रहा था। जैसे संजय महाराज, भगवान श्रीकृष्ण और महाभारत को देख रहे थे।

तत्पश्चात् मैं सचेत हो उठ बैठा। घटी घटना की बातें याद करने लगा तथा यह भी पश्चाताप कि गुरुजी महाराज को प्रणाम नहीं किया। तब तक साथी राशन ले कर आ गए। वे बोले "भाई पोहकर, अब तेरी जिम्मेवारी है, खाना स्वयं बना या कहीं बनवा कर ला।

इस समय मुझे आराम लगता था। बेचैनी और बुखार सर्व समर्थ के संकल्प से ही कोसों दूर थे। मैं उठा और राशन अपने सिर पर रखकर आराध्यदेव महाराज द्वारा निर्देशित दिशा की तरफ बढ़ चला। सोच रहा था कोई जान पहचान नहीं, किस तरह क्या होगा ?

निकट ही जो चार दिवारी थी। जैसे ही मैं वहाँ पहुँचा, दो जवान धोती कुर्ता पहने, लम्बी मोटी चोटी, नंगे पैर, फुर्ती से आए। बोले, "आओ महाराज !" मैंने कहा भाई जी भोजन बनवाना है। वे मेरे सिर से राशन लेते हुए बोले, "ठीक है बना देंगे !" मैंने सामान रोकते हुए पूछा, रुको, तुम कौन हो ?' वे बोले, ब्राह्मण हैं महाराज मैंने कहा ब्राह्मण हो तो जनेऊ दिखाओ। उन्होंने जनेऊ दिखाए मैंने उनको सहर्ष राशन दे दिया।

एक ब्राह्मण तो राशन लेकर अन्दर चला गया। दूसरा मेरी तरफ मुँह करके, आगे—आगे उल्टा चलता हुआ, हाथ से नम्रता दर्शाता हुआ, "आओ महाराज कहता हुआ अन्दर ले गया। चार दिवारी के शुरु से ही ६—१० फुट की पक्की ईंटों से सुन्दर सड़क/गली बनी हुई थी। अन्दर मनमोहक मन्दिर के पास पीपल का वृक्ष, सुन्दर चबूतरे से सुशोभित हरियाली फैलाए मन्द—मन्द सुगन्धित वायु में मुस्करा रहा था। पानी का छिड़काव था। शीतल छाया में एक चारपाई नए बिस्तर तकिए साथ किसी अतिथि की राह

देख रही थी।

चारपाई के पास जाकर ब्राह्मण बोला, बैठो महाराज ! मैं बैठ गया वह बोला, आराम से ऊपर पैर करके बैठो। तब तक दूसरा ब्राह्मण राशन रखकर हाथ का पंखा ले आया और बोला लेट जाओ महाराज तथा पंखा डुलाने लगा। मैंने उसका पंखा पकड़ते हुए कहा भाई जी आप तकलीफ न करो, पंखे की जरूरत नहीं है। बस भोजन बना दो, बहुत मेहरबानी होगी। वे अन्दर चले गये।

अगले ही क्षण दोनों ब्राह्मण एक जग में दूध और एक खाली गिलास लेकर आए। बोले लो महाराज दूध पी लो। एक तो पंखा करने लगा। दूसरे ने दूध का गिलास भर कर दे दिया। मैंने पी लिया। गांव में मैंने अपनी भैंस का बहुत दूध पी रखा है मगर इस दूध का स्वाद उससे ऊपर था। बहुत स्वादिष्ट लगा। मैं गिलास चारपाई के नीचे रखने लगा तो दोनों ने तत्परता की। बोले महाराज और लो। मैंने कहा यह आप पी लो। वे बोले यह आपके लिए ही आया है और कहते–कहते गिलास दूध से भरकर मुझे थमा दिया। न जाने कैसे, मैं तमाम दूध पी गया और लेट गया।

शरीर पुलकित एवं मन आनन्दित हो गया। आनन्ददायक बिस्तर था। मन्द शीतल वायु में पीपल हंस रहा था। पक्षी चहक रहे थे। पेट में दूध भरा था, परिणामतः तन्द्रा सताने लगी। तभी वे भाईजी बोले, "खाना तैयार है महाराज जी"। मैं चकित रह गया इतना जल्दी ? भोजन लेकर मैं डेरे पर पहुँचा। मुझे जल्दी लौटा सोचकर साथी कहने लगे, क्या हुआ ? नहीं बन पाया खाना ? मैंने कहा बन गया है। ले लो। जबकि दूसरे ग्रुप वाले जो साथ–साथ राशन लाए थे अभी भोजन बनाना शुरू ही नहीं कर पाए थे।

भोजन साथियों को सौंपकर मैं विश्राम करने लगा। साथी भाई भोजन करने लगे। बहुत–बहुत स्वादिष्ट लगा अतः खाते ही रह गए। वे मुझे भी खाने के लिए विवश करने लगे, बोले, पोहकर भोजन खाकर देख, बहुत स्वादिष्ट है। यह भोजन नहीं, महाप्रसाद है। जरा चखकर तो देख। मेरी भूख की जगह तो दो गिलास दूध ले चुका था। मगर भाईयों के आग्रह के कारण जरा सा भोजन ले बैठा। खाने लगा तो खाता गया और लेता ही गया। साथ–साथ चट करता ही गया। भोजन का भण्डारा भी समाप्त नहीं हुआ।

दिल खुश हो गया। शरीर में बहार आ गई। रोग दोष सब जाता रहा। अब मेरे दिल में आया कि उन ब्राह्मणों का धन्यवाद तो अवश्य करना चाहिए, जिन्होंने इतना रुचिकर भोजन बनाया।

अंत में पुनः वहाँ गया। आश्चर्य, महान आश्चर्य यहाँ तो कोई नहीं। न सफाई, न पानी का छिड़काव, न वो चारपाई न रसोई, न कोई पक्षी, न सुगन्ध, इसके विपरीत दुर्गन्ध थी।

ऐसा लगता था लम्बे समय से यहाँ कोई नहीं आया।

मैंने सोचा मैं और कहीं आ गया। नहीं–नहीं उसी चार दिवारी के अन्दर आया हूँ। मैंने आवाज लगाई, कोई है यहाँ ? मन्दिर से कोई बोला "कै बात से" मैंने एक बूढ़ा बैठा नजर आया। मैं ४–५ कदम उधर बढ़ा तो वह बूढ़ा भी गायब। मैं अचम्भित सा वापिस आ गया। वह गुरुदेव महाराज ! आपकी माया कौन जान सकता है ? यह बताते हुए आज भी बात ताजी लगती है।

अनायास ही मुख से निकल जाता है :–

ऐसे गुरुदेव को कभी ना बिसारिए
ऐसे सृष्टि रचियता को कभी ना बिसारिए
ऐसे भाग्य विधाता को कभी ना बिसारिए
ऐसे पतित पावन को कभी ना बिसारिए
ऐसे दीन दयाल को कभी ना बिसारिए।। कभी ना .....

* * *

चरित्र निर्माण ही कल्याणकारी !

यदि तुम अपनी गलतियों के नाम पर घर जाकर अपने सिर पर हाथ रखकर जन्मभर रोते रहोगे तो तुम्हारा उद्धार नहीं होने वाला, बल्कि उससे तुम और भी दुर्बल हो जाओगे। यदि कोई कमरा हजारों वर्षों से अन्धकारपूर्ण हो और तुम उसमें जाकर रोने–धोने लगो–हाय बड़ा अंधेरा है तो क्या उसमें से अंधेरा चला जायेगा ? सारे जीवन यदि तुम अफसोस करते रहो–अरे मैंने अनेक दुष्कर्म किए, बहुत–सी गलतियाँ की तो उससे क्या लाभ ? हममें बहुत दोष है, यह किसी को बतलाना नहीं पड़ता। दोष दुर्गुण दूर करने का दृढ़ता से उपाय करो, ज्ञानाग्नि प्रज्ज्वलित करो, एक क्षण में सब अशुभ चला जायेगा। अपने चरित्र का निर्माण करो और प्राकृत स्वरूप को उसी ज्योतिर्मय उज्ज्वल, नित्यशुद्ध स्वरूप को प्रकाशित करो तथा प्रत्येक व्यक्ति में उसी आत्मा को जगाओ।

–स्वामी विवेकानन्द

कवित्त

भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

चैत का महीना शुक्लपक्ष को सुहानो दिन
नौमी तिथि जन्म लियौ बसुधा सिहाई है।
सुन्दर सलौनो रूप; मन है गम्भीर कूप,
योग के अनूप भूप, भागवन्ती भाई है।।
एक-दस-हजार-लाख कोटि-कोटि गुण भरे,
अन्त से अनन्त हुये, गुरु-सत्ता पाई है।
हे दयालु ! हे कृपालु ! योगीराज महाराज
मोकूँ उबारो नाथ देर क्यों लगाई है।।१।।

बिकसी सुधा-सर में पंकज अनोखौ एक
मस्त गन्ध सूँघ-सूँघ मधुप भुलाने हैं।
एक की अवाज सुनि दूसरो अन्दाज करै
तीसरो भी नाज करै, प्रभुजी मनाने हैं।।
पोर-पोर, टौर-ठौर वर्षा है कौर-कौर
एक कौर खाय-खाय और ललचाने हैं।।
महक हवायें गईं चहक दिशायें गईं
लोक-परलोक तक सब हरसाने हैं।।२।।

कंज चारों ओर घूम, पात-पात चूम-चूम
पी पराग झूम-झूम गुंजार करते हैं।
गुंजन में गुरु-मंत्र जपत रहत रात दिन
या कि फिर गुणगान संचार करते हैं।।
याकि फिर याचनायें; या कि फिर कामनायें;
या कि वेद की ऋचायें उच्चार करते हैं।
अपनो विचार यही 'गुरुदेव जय-जय'
बोल बोल दण्डवत् नमस्कार करते हैं।।३।।

मानिक दलाल संग रामरती आदि-आदि
अनगिन अँधेरों के नयन उधारे हैं।
काट दिये रोग-भोग, योग से करायौ योग
दिल खोल खोल दिये दया के पिटारे हैं।।
रज-पुष्प-शक्तिपात देकर समाधि दई
अनुपम निराले करे भीतर नजारे हैं।
गन्दगी निकार दई; जिन्दगी सुधार दई;
वन्दगी हमारी लेउ; हमहूँ तुम्हारे हैं।।४।।

योग में हस्त मुद्राओं का महत्व

डा० जे० पी० शर्मा, पौंटा साहिब

क्षिति जल पावक गगन समीरा,
पंच तत्व यह अधम शरीरा।।

प्रकृति ने हमारा शरीर पांच तत्वों के समावेश से बनाया है। पांच तत्व इस प्रकार हैं– (१) पृथ्वी (२) जल (३) अग्नि (४) आकाश तथा (५) वायु। शरीर में ठोस पदार्थ जैसे अस्थियां, दांत, नाखून, मज्जा तथा त्वचा सब पृथ्वी तत्व के द्योतक हैं जो मृत्युपरांत दाह संस्कार के बाद राख में परिवर्तित हो जाते हैं। शरीर में पाये जाने वाले खून में, पाचक द्रव्यों में जल तत्व होता है। शरीर को गतिशील बनाने में, भोजन को पचाने में, खून को साफ करने तथा पूरे शरीर में फैलाने में अग्नि तत्व की प्रधानता पाई जाती है। बाहरी त्वचा आवरण का कार्य कर रही है जिसके अन्दर हृदय, अमाशय, गुर्दे, यकृत तथा अन्य अंग अपना–अपना कार्य कर रहे हैं जिनमें काफी खाली स्थान पाये जाते हैं। अतः खाली स्थान आकाश के द्योतक हैं तथा अन्दर के अंगों में दबाव उत्पन्न करने में वायु का काम हुआ करता है। पेट में वायु पाई जाती है कहते हैं पेट में गैस बन रही है। पेट फूल रहा है हवा घूम ही नहीं रही है।

शरीर में इन तत्वों की कमी से तथा इनके असंतुलन से अनेकों प्रकार की बीमारियां पैदा हो जाती हैं। अतः परम आवश्यक है कि मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये ये पांचों तत्व सन्तुलित रहें। प्राचीन ज्ञान के अनुसार हाथों की पांचों उंगलियां पांचों तत्वों की उपस्थिति दर्शाती हैं। अतः हाथ की उंगलियों में आरोग्यता का राज छिपा है। हमारे पूर्वजों ने इसकी खोज पहिले ही कर रखी है। अतः हाथ के अंगूठे में अग्नि तत्व, तर्जनी उंगली में हवा, मध्यमा में आकाश, अनामिका जिसमें अंगूठी पहनी जाती है, में पृथ्वी तथा कनिष्ठका उंगली में जल तत्व पाया जाता है। अतः पांचों अँगुलियां शरीर में चैतन्यता तथा आरोग्यता देने की माध्यम हैं। हमारा दिमाग विकसित है तथा अनेकों क्षमताओं से भरा पड़ा है। मस्तिष्क में क्षमतायें आवृत हैं तथा उन्हें अनावृत करके लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं। नाचने तथा गाने में भी मनुष्य तरह–तरह की मुद्रायें करते हैं। जिससे शरीर की नस नाड़ियां प्रभावित होती हैं तथा शरीर सुडौल होता है। हाथों द्वारा बनाई गई मुद्रायें तुरन्त अपना असर शरीर में डालती हैं। जिस हाथ से मुद्राऐं बनाई जाती हैं शरीर के विपरीत भाग में उनका प्रभाव तुरन्त पड़ता है। मुद्रायें बनाते समय मनुष्य का सुखासन में बैठना

श्रेयष्कर है। वैसे वज्रासन में भी गृहस्थी भाई–बहन बैठकर मुद्राओं का प्रयोग कर सकते हैं। ब्रह्मचारी पद्मासन में बैठकर कर सकते है। मुद्रायें प्रतिदिन तीस से बैंतीस मिनट तक करने से पूर्ण लाभ प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा करते समय पेट खाली होना आवश्यक है। अगर एक बार में न कर सकें तो दो–तीन बार में मुद्रायें की जा सकती है। मुद्रायें करते समय जिन अँगुलियों का प्रयोग न हो उन्हें सीधी खड़ी रखें।

नित्य करने वाली हस्त मुद्रायें–

मुद्रायें करने से शरीर स्वस्थ्य बना रहता है। शरीर में पंच तत्वों का सन्तुलन बनाये रखने में मुद्रायें सक्षम है। भगवान शिव ने ताण्डव नृत्य क्यों किया ? भगवान कृष्ण मुरली क्यों बजाते थे ? नारद मुनि वीणा का उपयोग क्यों करते थे ? नृत्य करने, गाने बजाने एवं हस्त मुद्राओं के करने से हमारे शरीर में रक्त संचार ठीक से होने लगता है। ज्ञान तन्तु जागृत–सजग हो उठते है। नस नाड़ियाँ अपना–अपना कार्य ठीक से करने लगती है।

वायु के प्रकोपित होने से वात नामक रोग हो जाते हैं। अग्नि के प्रकोपित होने से पित्त बढ जाता है। जल के प्रकोपित होने से जलोदर जैसी व्याधियां शरीर में बन जाती है। वायु तथा जल के शरीर में बढ़ने से कफ प्रधान शरीर होने लगता है। पृथ्वी तथा आकाश की अधिकता से शरीर बेडौल तथा अतिरिक्त ग्रन्थियां बन जाया करती है। शरीर स्वस्थ रखने हेतु कुछ आवश्यक मुद्रायें इस प्रकार है–

(१) **ज्ञान मुद्रा** :–दाहिने हाथ को सीधा करें। हथेली वाला भाग सामने रखें। तर्जनी अंगुली के सिरे को अंगूठे पर लगा दें तथा थोड़ा जोर से दबायें। शेष अँगुलियों को सीधी आकाश की तरफ खड़ी रखें।

लाभ :– ज्ञान शक्ति बढ़ती है। स्मरण शक्ति तेज हो जाती है। अनिद्रा तथा सिरदर्द भाग जाते हैं। दिमाग के स्नायु विकसित हो उठते हैं। विद्यार्थी का पढ़ने में मन बना रहता है। क्रोध शांत हो जाता है। अध्यात्म शक्ति का उत्तरोत्तर विकास होने लगता है। मंत्रजाप में मन लगता है। ध्यान करते समय मुद्रा करने में विशेष अनुभूतियां होने लगती है।

सावधानियाँ–मादक द्रव्यों का सेवन न करें अन्यथा पागलपन हो सकता है। सुपाड़ी, जर्दा, पान मसाला, तम्बाकू का सेवन वर्जित है। अति गर्म तथा ठंढे पदार्थ न लिये जायें।

(२) **वायु मुद्रा** :–*विधि*–तर्जनी अँगुली को मोड़कर अंगूठे के मूल में धीरे से दबाकर रखें तथा शेष अँगुलियो को सीधी आकाश की तरफ खड़ी रखें।

लाभ–प्रकोपित वायु शांत हो जाती है। घुटने का दर्द ठीक हो जाता है। लकवा, साइटिका, गठिया तथा संधिवात के दर्द ठीक होते है। रीढ़ दर्द, गर्दन दर्द तथा पारकिंसन्स रोगों में अचूक लाभ होता है।

सावधानियाँ–लाभ प्राप्ति तक ही करें।

(३) **गगन मुद्रा**–*विधि*–मध्यमा अंगुली को अँगूठे के पोर से हल्के दबाव से मिला लें तथा शेष अंगुलियों को सीधी रखें।

लाभ–हृदय रोग ठीक हो जाता है। कानों के रोगों में अचूक लाभ होते हैं। हड्डियों की कमजोरी ठीक हो जाती है।

सावधानियाँ–घूमते समय तथा खाना खाते समय मुद्रा न करें। मुद्रा लाभ हो जाने तक ही करें।

(४) **शून्य मुद्रा**–*विधि*–अँगूठे की मूल में मध्यमा अँगुली को मोड़कर लगायें तथा अंगूठे से धीरे दबायें।

लाभ–गले तथा थायरायड रोगों में लाभ होता है। कान का बहरापन दूर करके साफ-साफ सुनाई देने लगता है। मसूड़ों की पकड़ मजबूत होने लगती है।

(५) **पृथ्वी (क्षिति) मुद्रा**–*विधि*–अनामिका अँगुली को अंगूठे से मिलायें। धीरे-धीरे दबाये रखें।

लाभ–पाचन क्रिया ठीक होने लगती है। सात्विक गुणों का विकास होने लगता है। दिमाग में शांति आती है। विटामिन सी की कमी दूर होती है। पतला व्यक्ति मोटा होने लगता है। जीवनी शक्ति का विकास होता है। वजन बढ़ता है। शरीर कान्तिमय हो जाता है। शरीर में सजगता तथा फुर्ती आने लगती है।

(६) **सूर्य मुद्रा**–*विधि*–अनामिका अंगुली को अंगूठे के मूल पर लगाकर अंगूठे से दबायें।

लाभ–वजन घटता है। शरीर सन्तुलित रहता है। मोटापा कम होता है। शरीर में तनाव कम होता है। खून में कोलस्ट्राल की मात्रा कम होती है। शरीर की गर्मी बढ़ती है। शरीर सशक्त हो जाता है। इस मुद्रा के करने से जिगर-लिवर के दोष दूर हो जाते हैं। मधुमेह ठीक हो जाता है।

सावधानी–दुर्बल व्यक्ति यह मुद्रा न करे। गर्मियों में अल्प समय ही करें।

(७) **जल (वरुण) मुद्रा**–*विधि*–कनिष्ट अंगुली को अंगूठे से लगाकर मिलायें।

लाभ–त्वचा चमकीली, चिकनी, सुडौल तथा मुलायम हो जाती है। त्वचा रोग, जल विकार, रक्त विकार दूर हो जाते हैं। मुँहासे ठीक हो जाते है तथा चेहरा सुन्दर हो जाता है। त्वचा का रूखापन मिट जाता है।

सावधानियाँ–कफ प्रकृति वाले लोग इस मुद्रा का अधिक प्रयोग न करें।

(८) **अपान-मुद्रा**—*विधि*—मध्यमा तथा अनामिका अँगुलियों को अंगूठे के अग्र भाग से लगा दें तथा धीरे से दबाये रखें।

लाभ—शरीर में नाडी शोधन हो जाता है। कब्ज तथा मल दोष दूर हो जाते हैं। वायु विकार, मधुमेह, मूत्रावरोध, गुर्दों के दोष, दाँतों के दोष दूर हो जाते हैं। पेट के लिये बहुत लाभप्रद है। बवासीर ठीक करता है। हृदय रोगों में लाभकारी है तथा शरीर में पसीना लाता है।

सावधानी—इस मुद्रा से मूत्र अधिक आता है।

(९) **अपान वायु अथवा हृदय रोग मुद्रा**—*विधि*—तर्जनी अँगुली को अंगूठे के मूल में लगायें तथा मध्यमा और अनामिका अँगुलियों को अँगूठे के अग्रभाग से लगावें।

लाभ—कमजोर हृदय वाले इस मुद्रा को नित्य करें। दिल का दौरा पड़ते ही इस मुद्रा के करने पर आशातीत लाभ होता है। पेट की गैस निकल जाती है। सिर दर्द तथा दमे के रोगों में लाभकारी है। सीढ़ियाँ चढ़ने से पांच–दस मिनट पहिले यह मुद्रा करके चढ़ने पर साँस नहीं फूलती। उच्च रक्तचाप सामान्य हो जाता है।

सावधानी—हृदय का दौरा पड़ते ही इस मुद्रा का उपयोग अवश्य करें।

(१०) **प्राण-मुद्रा**—*विधि*—कनिष्ट तथा अनामिका अँगुलियों के अग्रभागों को अँगूठे के अग्रभाग से धीरे से दबाते हुये मिलायें।

लाभ—आँखों के विकार दूर करके ज्योति बढ़ाती है। यह मुद्रा शारीरिक दुर्बलता दूर करती है। मन को शांत रखती है। शरीर में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाती है। विटामिनों की कमी दूर करती है। शरीर की थकान दूर करके नवशक्ति का संचार करती है। लम्बे दीर्घकालिक उपवासों में भूख–प्यास नहीं सताती तथा चेहरे, आँख, एवं शरीर को चमकदार बनाती है। अनिद्रा में इसे ज्ञान मुद्रा के साथ करें।

(११) **लिंग-मुद्रा**—*विधि*—दोनों हाथों की अँगुलियाँ मिलाकर मुट्ठी बाँधें। बायें हाथ के अंगूठे को खड़ा रखें। दायां अंगूठा बायें अंगूठे पर रहे।

लाभ—शरीर में गर्मी बढ़ती है। सर्दी, जुकाम, खाँसी, दमा, साइनस, लकवा और कम रक्तचाप में लाभकारी है। कफ कम करता है।

सावधानियाँ—अधिक समय तक मुद्रा न करें। मुद्रा करने के बाद जल, फल, रस, घी तथा दूध का सेवन अधिक करें।

❊ ❊ ❊

जपि जेई पिय संग भवानी

कृष्ण कुमार पाण्डेय (गोरखपुर)

आदि कवि वाल्मीक भगवान राम के नाम को उल्टा जप कर उच्च कोटि के महापुरुष हो गये। ईश्वर की यह महती कृपा है। हमारे भारतवर्ष में ऐसे साधक हुए जिन्होंने सद्गुरु की कृपा प्राप्तकर अद्भुत कार्य किये हैं। इसीलिए जीवन में सद्गुरु की आवश्यकता है। ऋषिवर वाल्मीक ने राम नाम के प्रताप को तब समझा जब उनके हृदय का शोक श्लोक बन गया। जिससे महाकाव्य की रचना हो गयी। जो "रामायण" के रूप में भगवान राम के चरित्र को उजागर करती है। जिससे जनमानस कल्याण का भागी हो रहा है।

एक बार माता पार्वती ने भूतनाथ भगवान शंकर जी से यह सुना कि राम नाम सहस्त्र नाम के समान है। तब से माता समझ गयी कि मेरे पतिदेव सदैव राम नाम का ही जप क्यों करते रहते हैं। तभी से पति के स्वरूप को हृदय में धारण कर तथा उन्हें उपदेष्टा (गुरु) मानकर वह भी जप में लग गयी। नाम के प्रति पार्वती के हृदय की ऐसी प्रीति देखकर भगवान भोलेनाथ हर्षित हो गये। उन्होंने स्त्रियों के भूषण रूप अर्थात् अपना आभूषण बना लिया। उन भोले नाथ ने अर्धनारीश्वर रूप को धारण किया। नाम के प्रभाव के कारण ही कालकूट विष ने भी अमृत का फल प्रदान किया। गुरुदेव भगवान साधकों को जप के बारे में उपदेशित करते रहते थे। गुरु मंत्र वस्तुतः इसीलिए प्राप्त किया जाता है कि साधक सदैव जप करता रहे–पातञ्जल योग सूत्र में कहा कि–**तज्जपस्तदर्थभावनम** अर्थात् ईश्वर के नाम का जप और उसके स्वरूप का स्मरण चिन्तन करना चाहिये। यही बात गीता में अखिल नायक योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने कही–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

अर्थात् जो पुरुष "ॐ" इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण (जप) करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है।

तुलसी दास जी ने ठीक ही लिखा है **जपिं जेई पिय संग भवानी**। समझने में नाम और नामी दोनों एक से हैं किन्तु दोनों में स्वामी और सेवक का सा प्रेम है। नाम और रूप दोनों ईश्वर की उपाधि है तथा ये अनिर्वचनीय और अनादि है। शुद्ध भक्ति और बुद्धि से ही वह अविनाशी जानने में आता है। तुलसीदास जी ने मानस में जिस नाम जप को भवानी पति के साथ करती है उसके बारे में सुन्दर उपाख्यान मिलता है। उन्होंने कहा–नाम और

रूप की गति की कहानी अकथनीय है। उसकी कथा सुनने में तो सुखदायी होती परन्तु उसका वर्णन करना कठिन होता है। यह वस्तुतः निर्गुण और सगुण के बीच में सुन्दर साक्षी है। ब्रह्मा के बनाये हुए इस प्रपञ्च से भली भाँति छूटे हुए वैराग्यवान युक्त योगी पुरुष इस नाम को ही जीभ से जपते हुए जागते हैं और नाम तथा रूप से रहित अनुपम अनिर्वचनीय, अनामय, ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं। जो सब प्रकार की कामनाओं से रहित और श्रीराम भक्ति के रस में लीन है उन्होंने भी नाम के सुन्दर प्रेमरूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है। इसीलिए भवानी पिय के संग अपने मन को राम के रूप और नाम रूपी सुधा का आस्वाद निरन्तर करते रहते हैं। समाधि की अवस्था में उसी नाम और रूप के साथ तदाकार की वृत्ति बनाकर अखण्ड समाधि में रहते हैं। ईश्वर के सगुण रूप में नाम सबसे बड़ा है। निर्गुण काष्ठ की अग्नि की तरह अप्रकट होता है। वस्तुतः ईश्वर का यह स्वरूप (निर्गुण) अखण्ड समाधि में ही संभव है। इसीलिए शिव को समाधि प्रिय है। सगुण में रूप का भेद होता है किन्तु निर्गुण में हर प्रकार का अभेद होता है। इसीलिए यह प्रिय होता है। वैसे भी सगुण रूप ने कुछ का उद्धार किया लेकिन निर्गुण रूप ने तो असंख्यों का उद्धार किया है।

इसी कारण भवानी भी उसी रूप का आनन्द लेना चाहती है। नाम अपने भक्तों के दोष दुःख और दुराशाओं का इस तरह नाश कर देता है जैसे सूर्य रात्रि का। सगुण राम ने भयानक दण्डक वन को सुहावना बनाया परन्तु नाम ने असंख्य मनुष्यों के मन को पवित्र कर दिया। श्री रघुनाथ जी ने राक्षस समूह का नाश किया किन्तु नाम तो कलियुग के सारे पापों की जड़ उखाड़ने वाला है।

नाम जप से शिवजी अमंगल वेश को धारण करने के बाद भी मंगलों की राशि है। अर्थात् उनका सारा अमंगल वेश मंगल रूप में लोक कल्याण कर रहा है। तुलसीदास इसी जपि जेई पिय संग भवानी के परिप्रेक्ष्य में कहते है कि–कलियुग में राम का नाम कल्पतरु और कल्याण करने वाला है। जिसका स्मरण करने से भांग सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसी के समान पवित्र हो गया। चारों युगों में तीनों कालों में और तीनों लोकों में नाम जपकर जीव शोक रहित हुए हैं। वेद, पुराण और संतों का मत है कि समस्त पुण्यों का फल श्री राम जी में प्रेम होना है। ऐसे कराल कलिकाल में नाम ही कल्पवृक्ष है जो स्मरण मात्र से संसार के जंजालों का नाश कर देने वाले हैं। यह मनोवाञ्छित फल को देने वाला तथा परलोक को भी सुधारने वाला है। वस्तुतः कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है, न ज्ञान ही है, बस राम नाम ही एक आधार है। कपट की खान कलियुग रूपी कालनेमि में अमंगल का नाश करने वाला नाम स्मरण ही सभी उपायों में श्रेष्ठ है। इसे भाव से अथवा कुभाव से किसी रूप में लेते रहना ही चाहिये।

***

चित्त, उसके प्रकार और चित्त प्रसादन

दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर, अलीगढ़

हमारे चित्त पर प्रभाव पड़ता है। जब एक ही विचार में व्यक्ति लीन हो जाता है तो उसे फिर उसके अलावा कुछ दिखाई नहीं देता। जब कोई विद्यार्थी कक्षा में बैठा हो और अपने आपको दूल्हा बना हुआ घोड़ी पर बैठा हुआ मुख्य बाजार में देख रहा हो, तो उसे न तो अध्यापक दिखाई देगा और न कक्षा में कोई अन्य विद्यार्थी दिखाई देगा। यही नहीं कक्षा में क्या पढ़ाया जा रहा है उसे कुछ सुनाई भी नहीं देगा। उसका चित्त तो दूल्हा में तल्लीन है।

चित्त के प्रकार–

चित्त तीन प्रकार का होता है :–

(१) **प्राकृत चित्त** : प्राकृत चित्त चंचल होता है और इसमें बंदर जैसी चंचलता–चपलता होती है।

(२) **विकृत चित्त** : यह चित्त अधोगामी होता है। इस प्रकार का चित्त शूर्पनखा जैसी स्त्रियों में और शैतानों में पाया जाता है।

(३) **संस्कृत चित्त** : यह चित्त ऊर्ध्वगामी होता है। इस चित्त में चातक जैसी अनन्यता होती है। अनन्य प्रेम और निष्ठा होती है। उदाहरण के लिए चातक के विषय में तुलसीदास द्वारा लिखे हुए दोहे को लिया जा सकता है–

ऊँची जोति पपीहरा पिये न नीचो नीर।
के जाँचे घनश्याम सों, के दुःख सहै शरीर।। १।।
गंगा, जमुना, सरसुती है, जग में भरपूर।
तुलसी चातक के मते, स्वांति बिना सब धूर।। २।।
अराड फोड़ कियो चेटुवा, तुप परयो नीर निहार।
गहि चंगुल चातक चतुर, दीन्यो बाहर डार।। ३।।
बच्यो बधिक परयो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पढ़, मरतहुँ लगी न खोंच।। ४।।

एक बार सम्राट अकबर पूजा कर रहे थे। एक पत्नी अपने पति के वियोग में उसी के ध्यान में तल्लीन थी। इसके सिवाय उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। वह स्त्री पूजा करने वाले वस्त्र पर पैर रखकर निकल गई। यह देखकर अकबर आग बबूला हो गया और इसका कारण पूछने लगा। उस स्त्री ने उत्तर दिया–

नर राची सूझयो नहीं, तुम कस लख्यो सुजान।
कुरान पढ़त बूढ़े भये, नहीं रांच्यो रहमान।।

सन्यासी का चित्त स्वच्छ, शांत, प्रसन्न और समाहित होना चाहिए। श्रीमद्भागवत गीता में श्रीकृष्ण जी ने कहा है–

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।। *(श्लोक १४, अध्याय ८)*

हे अर्जुन! जिसका चित्त सिवा मुझ परमेश्वर के और किसी को नहीं जानता अर्थात् जो मेरा अनन्य भक्त है, जो लगातार मेरी ही याद करता है ऐसा एकाग्रचित्त वाला योगी मुझे सहज ही में प्राप्त कर लेता है।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।। *(श्लोक ६, अध्याय १०)*

जिस का चित्त पूर्ण रूप से मुझ सच्चिदानंद स्वरूप के ध्यान में लगा हुआ है और जिन्होंने अपने प्राणों को भी मुझे अर्पण कर दिया है, ऐसे भक्त एक दूसरे को मेरे स्वरूप के ज्ञान का उपदेश करते हुए और नित्य मेरे गुण और ऐश्वर्य की चर्चा करते हुए उसी आनन्द में मग्न रहते हैं।

चित्त प्रसादन (चित्त को प्रसन्न रखने और निर्मल बनाने के उपाय)

१. जो लोग सुखी है जिन पर ईश्वर की कृपा है, जो देश समाज, धन और शासन में आगे बढ़े हैं, उनके साथ मित्रता करो। मित्रता का अर्थ चाटुकारिता नहीं है। ईर्ष्या मत करो। उनके सुख में सुखी बनो। व्यर्थ में अपने लिये चिंता मत जलाओ।

२. जो लोग दुःखी है, अपने किसी बुरे काम का फल भोग रहे हैं, उनसे घृणा मत करो। उन्हें चिढ़ाने का प्रयत्न न करो, उन्हे अपने से नीचा समझकर उन्हें अधिक दुःखी न करो, अपितु उन पर करुणा करो, उन पर तरस खाओ। जहाँ तक हो सके उनकी सहायता करो। उनके दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करो। प्रयत्न करो कि उनके आँसू सदा के लिए नहीं तो थोड़ी देर के लिए ही मुस्कराहटों में बदल जायें।

३. जो लोग ऐसे है, जिन्होंने धर्म के मार्ग को अपनाया है, कर्तव्य मार्ग को अपनाया है, उन्हें देखकर प्रसन्न होओ कि संसार में इस प्रकार के उत्तम पुरुष भी विद्यमान हैं।

४. जो लोग धर्म को भूल गये हैं, कर्तव्य को भूल गये है, पाप के मार्ग पर चल पड़े है, नीचे गिर गये हैं, जिन्हें उठाने और धर्म तथा कर्तव्य के मार्ग पर लाने का तुम्हारा प्रयत्न सफल नहीं हुआ, उनकी अपेक्षा करो, उनसे परे हट जाओ। उनकी ओर से ऐसे रहो जैसे वे तुम्हारे लिए संसार में विद्यमान ही नहीं। यह है चित्त के प्रसादन के उपाय।

* * *

"जय गुरुदेव"

दिनेश शर्मा, जरेरा (दिल्ली)

जीवन व्यर्थ रहा मेरा, नहीं पाया कुछ ज्ञान।
नहीं दर्शन प्रभु के किए, नहीं गाया गुरु गान।।

नहीं जाना मैं योग को, नहीं जाना मैं ध्यान।
नहीं सत्संगति कर सका, कैसे हो कल्यान।।

नाम जपत कटि जात हैं, कोटि जनम अपराध।
ऐसा गुरु का नाम है, मूरख क्यों सकुचात।।

गिनी हुई ये सांस हैं, विरथा मती गंवाय।
गुरु नाम का जाप कर, नहीं तो फिर पछिताय।।

योग योग ही योग है, योग सकल आधार।
योग जोड़ता सभी को, क्या गुरु हरि पितु मात।।

जीवन सत्य करे कोई, है गुरु का वरदान।
रोग न व्यापै देह को, सत्य बात लेउ जान।।

पाप अग्नि ऐसी लगी, सबको रही जलाय।
जो आवे सतगुरु शरन, दें शीतल लेप चढ़ाय।।

है दर्शन दुरलभ बड़ा, बड़े भाग्य लेउ मान।
जो मिलिए सच्चा गुरु, पूर्ण सत्य लेउ जान।।

मधुवन अंदर वीर रहो, देखो ध्यान लगाय।
योग राह पर चलि पड़ो, पहुंचो मधुवन जाप।।

हार हाथ में है मेरे, मन में चाहूँ जीत।
गुरुवर गला बढ़ाय देउ, जीवन जाऊं जीत।।

आश्रम समाचार

श्री प्रयागराज में माघ मेला एवं यौगिक सत्संग शिविर

प्रयागराज में प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी १४ जनवरी से १४ फरवरी तक योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज श्री सिद्ध गुफा संवाई आगरा का कैम्प इलाहाबाद तथा आसपास के गुरु भाई बहिनों के द्वारा आयोजित किया गया। इस कैम्प का संचालन इलाहाबाद के गुरुभाईयो की कमेटी के द्वारा होता है। श्री योग साधना आश्रम ऋषिकेश से आचार्य श्री पूर्णचन्द शर्मा इस शिविर के संचालन में विशेष सहयोगी होते है। इसमें मकर संक्रान्ति का पर्व, मौनी अमावस्या, बसन्त पंचमी तथा माघ पूर्णिमा के विशेष स्नान पर्व रहते है। मौनी अमावस्या के पर्व पर लगभग पचास लाख श्रद्धालुओं से पवित्र त्रिवेणी तथा अन्य घाटों में स्नान किया। इस कैम्प में हरियाणा, पंजाब, मध्यप्रदेश, बिहार तथा हिमाचल प्रदेश के श्रद्धालु आकर निवास करते हैं उनके ठहरने तथा भोजन की व्यवस्था कैम्प में ही रहती है।

इस शिविर में समय-समय पर बाहर से पधारे विद्वान गुरुभाईयों एवं साधकों के योग परक प्रवचन होते रहे। श्री सिद्धगुफा संवाई आगरा से पधारे योगाचार्य श्री दासलाल जी ब्रह्मचारी, वाराणसी से श्री आत्माप्रसाद सिंह एडवोकेट तथा दिल्ली से पधारी डा. श्रीमति राजकुमारी त्रिखा तथा श्री जनार्दन पाण्डेय जी के योग परक व्याख्यान होते रहे। इन विद्वान वक्ताओं ने ध्यान योग की महत्ता विधि एवं इसके अभ्यास से अलौकिक लाभ आदि विषयों पर सारगर्भित व्याख्यान दिये।

सैकड़ों की संख्या में साधक यहाँ महीना भर रहकर योग साधनारत रहकर साधनालीन रहते हैं। योग आसन जीवनतत्व साधन, नेति, प्राणायाम, कपालभाति आदि क्रियाओं का भी अभ्यास रोगियों को कराया जाता था। इस प्रकार से इस शिविर में रहकर साधकों ने नयी स्फूर्ति ऊर्जा युक्त होकर अपने को निरन्तर आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। यहाँ पर रह साधना करने का अक्षय फल मिलता है।

अगले वर्ष अर्धकुम्भ है आशा की जाती है साधक और अधिक उत्साह के साथ आकर योग साधनालीन रहकर आगे बढ़ेंगे।

❊ ❊ ❊

स्वरूप ज्ञान

जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिन ।। *गीता ४/३४*

ब्रह्म तत्व को प्राप्त करने के लिए अनेक मार्ग हैं। भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, योगमार्ग अथवा कर्म मार्ग आदि। इन समस्त मार्गों में ब्रह्म प्राप्ति के लिए श्री गुरुदेव अपने उपदेश के द्वारा दो विधियों का आश्रय लेते हैं। (१) अन्वय विधि (२) व्यतिरेक विधि।

(१) अन्वयविधि–

अन्वयविधि से श्री सद्गुरुदेव साधक को सर्व प्रथम उपदेश देते हैं। यह विधि कठिन है। इस विधि से दिए गए उपदेश को वे ही साधक ग्रहण कर पाते हैं, जो भ्रष्ट योगी होते हैं। अर्थात् जिन्होंने अपने पूर्व जन्मों में साधना की है और साधना पूर्ण होने से पूर्व शरीरपात हो जाता है। उनकी साधना जहाँ तक होती है, वहीं से नये शरीर में उनकी अगली साधना अनायास ही प्रारम्भ हो जाया करती है। ऐसे साधक भ्रष्ट योगी कहलाते हैं। ऐसे ही योगी इस साधना विधि से शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं, और वे तत्काल ही अपने को परम सिद्धि तक पहुँचा पाते हैं।

(२) व्यतिरेक विधि–

सद्गुरुदेव साधक को शास्त्रों के अध्ययन और स्वाध्याय के द्वारा उस ब्रह्म तत्व को जानने के लिए स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर कराते हुए सीढ़ी दर सीढ़ी साधना में साधक को ऊपर उठाते रहते हैं। और अन्ततः ब्रह्म तत्व का ज्ञान कराकर सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा देते हैं। यथा एम. ए. की पुस्तकों का अध्ययन तभी किया जाता है जब विद्यार्थी कक्षा १२ आदि से क्रमशः उत्तरोत्तर उन्नत होता हुए एम. ए. की डिग्री प्राप्त कर लेता है।

उपनिषदों, गीता, योगदर्शन आदि सदशास्त्रों में उपदेश देने के लिए उपरोक्त विधियों को ही अपनाया गया है।

योग दर्शन–

भगवान पतञ्जलि देव ने योग दर्शन में भी इन्हीं अन्वय और व्यतिरेक पद्धतियों को अपनाया है। योग दर्शन के प्रथम समाधिपाद के दूसरे सूत्र में **'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'** कहकर तत्काल तीसरे ही सूत्र में उसका फल बतलाते हुए **''तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्''**

कह दिया है। जिसका अर्थ है कि चित्त की वृत्तियों के निरुद्ध हो जाने पर स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। परन्तु साधारण साधक एक दम इस स्थिति को प्राप्त नहीं हो पाता है। भ्रष्ट योगी ही इसका अनुसरण करके स्वरूप ज्ञान कर सकता है। यही योगदर्शनकार की अन्वय विधि है।

इसके उपरान्त व्यतिरेक विधि से साधकों को शिक्षा दी जाती है। चित्त की वृत्तियों के भेद और उनके लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। वृत्तियों के निरोध के लिए अभ्यास और वैराग्य का महत्व बतलाकर साधक को चेतावनी दी गई है कि वह इसका अभ्यास दीर्घकाल तक, निरन्तर तथा पूर्ण श्रद्धा के साथ करते रहने से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसके उपरान्त सम्प्रज्ञात समाधि की चारों प्रकार की समाधियों–वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुत समाधियों का उल्लेख किया गया है।

जब साधक फिर भी इस उपदेश को ग्रहण नहीं कर पाता है, तब श्री सद्गुरुदेव साधक को दूसरे साधनपाद के **"तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः"** कहकर उस साधक को स्वरूपस्थिति हेतु क्रियात्मक योग की शिक्षा देते हैं।

(१) **तप**–अपने वर्ण, आश्रम के अनुसार निष्काम भाव से स्वधर्म का पालन करना ही तप कहलाता है। इससे साधक का अन्तःकरण अनायास ही शुद्ध हो जाता है।

(२) **स्वाध्याय**–सत्शास्त्रों का अध्ययन तथा प्रणव अथवा गुरु प्रदत्त मंत्र का जाप करना स्वाध्याय कहलाता है। इसके अतिरिक्त साधक अपने स्वयं के दोषों को खोजकर उन्हें निकालता रहता है। यही उसका स्वयं का अध्याय है।

(३) **ईश्वर प्रणिधान**–अपने आपको ईश्वर या अपने गुरुदेव को पूर्ण समर्पित करना 'ईश्वर प्रणिधान' है। अपने दाता गुरुदेव तथा श्री सद्गुरुदेव की कृपा लीलाओं पर चर्चा करना तथा अनन्य भाव से अपने आपको समर्पित कर देना है।

इस क्रिया योग की साधना से अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनेश आदि पंच क्लेशों का नाश हो जाता है और साधक का अन्तःकरण विशुद्ध हो जाता है।

इन पंच क्लेशों की वृत्तियां ध्यान योग से भी क्षीण हो जाती है। ध्यान योग के कारण योग के अन्य बहिर्अंगों–यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार की साधना स्वतः हो जाती है। ध्यान के अन्तर्गत ही नाद योग, लय योग की साधना हो जाती है। इसलिये ध्यानयोग को राजयोग कहा है। ध्यान योग के द्वारा साधक योग सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा आन्तरिक भोगों का साक्षात्कार करता हुआ अपवर्ग को प्राप्त हो जाता है।

प्रारम्भ में साधक की वृत्ति बहिर्मुखी होती है। उसका सारा व्यवहार स्थूल जगत में

होता है। अतः स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने को योग दर्शन में निम्नांकित सूत्र से साधक को उसकी साधना करने के लिए प्रेरणा दी गई है।

विशेषाविशेषलिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वाणि २/१९

यहां गुण का अर्थ बाँस तथा पर्व का अर्थ पौरी है। जिस प्रकार बाँस का निचला भाग मोटा होता है और पौरी दर पौरी बाँस ऊपर की ओर पतला होता जाता है। उसी प्रकार श्री सद्गुरु देव साधक को स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाते हुए साधना कराकर अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचाते हैं।

विशेष १६ होते हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पांच महाभूत, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां तथा एक मन। विशेष इसलिए हैं कि इनसे स्थूल वस्तुओं और विकारों का ज्ञान होता है।

यह शरीर पांच भूतों का संघात है। अतः साधक का धर्म है कि सर्वप्रथम योगासनों द्वारा विशेषकर जीवन तत्व साधनों के द्वारा अपने शरीर को पुष्ट बनावें। शरीर के पुष्ट एवं स्वस्थ होने पर ही ध्यान की स्थिति में साधक चित्त को एकाग्र करने में समर्थ हो जाता है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं है, रुग्ण है तो ध्यान में चित्त की एकाग्रता नहीं आ सकती है। चित्त के एकाग्र हो जाने पर जब ध्यान अपने लक्ष्य की ओर तैल धारावत हो जाता है, तब योगी वितर्कानुगत समाधि में प्रवेश कर जाता है। चित्त के शमन हो जाने पर अन्य दशों इन्द्रियों का दमन स्वतः ही हो जाता है।

वितर्कानुगत समाधि में योगी स्थूल महाभूतों का साक्षात्कार करता है। पृथ्वी, पर्वतों, जंगलों, नदियों, समुद्र आदि का स्थूल रूप से साक्षात्कार करता है।

अविशेष छै होते हैं। पांच तन्मात्राएं–शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध तथा अहंकार। ये छै अविशेष हैं। इन्हीं को सूक्ष्म महाभूत भी कहते हैं। इनका स्वरूप इन्द्रियगोचर नहीं है, इसलिए इनको अविशेष कहते हैं। इन सूक्ष्म महाभूतों का साक्षात्कार योगी विचारानुगत समाधि में करता है। इस स्थिति में योगी को दिव्य गंध, दिव्य रूप आदि की अनुभूति होती है। देवताओं और कारक पुरुषों के भी उसे दर्शन होने लगते हैं।

तदुपरान्त चेतन से प्रतिबिम्बित चित्त में रहने वाले अहंकार की अनुभूति अस्मितानुगत में करता है। इस समाधि में केवल अस्मि प्रत्यय ही रह जाता है। अर्थात् "मैं हूँ" केवल यही ज्ञान शेष रह जाता है। यही लिंग मात्र है।

जब ध्यान द्वारा स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होते हुए योगी सम्प्रज्ञात समाधि की वितर्कानुगत, विचारानुगत तथा आनन्दानुगत समाधियों की सिद्धि करके अस्मितानुगत

समाधि में प्रवेश करता है तब उसे पुरुष से प्रतिबिम्बित चित्त का अनुभव स्पष्ट रूप से होने लगता है। यह भी चित्त की ही एक वृत्ति है, जो गुणों का ही परिणाम है। यह स्थिति भी स्वरूप स्थिति नहीं कही जा सकती है। जब योगी **"तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्/१/१६"** अपने सतत् अभ्यास के द्वारा गुणों से भी वितृष्ण हो जाता है। यही अलिंगमात्र स्थिति है। इसी स्थिति में योगी के जड़तत्व के अविवेकपूर्ण संयोग का चेतन तत्व से सर्वदा नाश हो जाता है और चित्त अपने कारण प्रकृति में विलीन हो जाता है। इसी को चित्त की निरुद्धावस्था कहते हैं। गुण पुरुष को भोग–भुगताकर अपवर्ग (मुक्ति) सम्पादन कर देते हैं। अब उनका कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता है। इस अविद्याकृत संयोग का अभाव हो जाने पर योगी अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यही है **"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्"**

इस प्रकार ही सद्गुरुदेव अपने शिष्य को स्थूल से सूक्ष्म की ओर शनैः शनैः ले जाते हुए कैवल्य अर्थात् प्रकृति के दायरे से अलग करा देते हैं।

(क्रमशः)

❊ ❊ ❊

"भाव प्रसून" — "सद्गुरुदेवार्थ"

मोतीलाल, कासगंज (एटा)

बिन दर्शन इतने दिन बीते।
इक–इक निमिष बिना देखे प्रभु,
कोटि कल्प सम बीते।।
याद आ रहे हैं वे क्षण–पल,
जो तुम्हरे सँग बीते।।
मृदु मुस्कान मधुर चितवन प्रभु;
बिन देखे कल न परीते।।
हृदय लगा सब दुःख भगावत गुरु;
पूछत सुख दुःख प्रीते।।
हे करुणानिधि, दया के सागर प्रभु,
अब क्यों हैं हम रीते।।
दर्शन देकर प्यास बुझा दो प्रभु;
अब बहुत दिना हैं बीते।।
बिन दर्शन इतने दिन बीते।।

आध्यात्मिक दिव्य ज्योति के प्रदाता सद्गुरुदेव

—कु० रचना शर्मा, गंगापुर सिटी

गुरुदेव जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है गुरु यह दो शब्दों से मिलकर बना है गु + रु अर्थात् गु का आशय है अंधकार और रु का आशय है अंधकार को दूर करने वाला। अर्थात् जो अंधकार को दूर करके प्रकाश का मार्ग बतलाए वही गुरु है।

गुरु तत्व उस प्रकाशित मणि की भाँति है जो कि स्वयं तो प्रकाशित है ही परन्तु वह अपनी अत्यंत अलौकिक आभा से अपने संपर्क में आने वाले समस्त वातावरण को आलोकित करती है। गुरुदेव की सर्वव्यापकता, महानता को शब्दों की लड़ियों में पिरोना अत्यंत दुष्कर कार्य है. कई बार अज्ञानी व्यक्तियों द्वारा पूछा जाता है सदगुरु कौन ? तो इस प्रश्न का सरल उत्तर है कि– सद्गुरु वो परमसत्ता है जो मनुष्य जीवन के दृश्य एवं अदृश्य सभी आयामों के मर्मज्ञ होते है। मानवीय चेतना की संपूर्णता का उन्हें विशेष अनुभव होता है। वे हमारे वर्तमान को जानने की जितनी गहन क्षमता रखते हैं, अतीत के बारे में भी वे उतनी ही जानकारी रखते हैं। साथ ही हमारे भविष्य के बारे में भी उन्हें पारदर्शी ज्ञान होता है। शरीर की कार्यक्षमता, मन की विचारशैली, चित्त की शमता, अहंकार की उलझी गांठें, चित्त में समाए जन्म जन्मान्तर के संस्कार इनके बारे में बखूबी जानते हैं। यही कारण है कि सद्गुरुदेव का मिलन हमारे महाभाग्य का सूचक है। यह इस बात का संकेत है कि हमारी आध्यात्मिक चिकित्सा की शुभ घड़ी आ गई।

शब्दों के माध्यम से गुरु तत्व की व्याख्या करना दुष्कर ही नहीं अपितु असंभव भी है, एक प्रकार से कहें तो यह तो परिभाषा मात्र है, गुरु सत्ता के पीछे छुपे अद्भुत सत्य को बिना उनकी कृपा के नहीं जाना जा सकता, जब तक जीव स्वयं को परम सदाशिव रूप गुरु सत्ता में स्वयं को एकाकार न कर ले तब तक यह परम रहस्य उद्घाटित नहीं हो सकता है, क्योंकि उनका वास्तविक स्वरूप तो हम जैसे जीव जानते ही नहीं, मगर उनकी करुणा कृपा या फिर कहें कि उनके दुलार, उनके शरणागत होकर हम उनकी कृपालीला और अलौकिकता का कुछ परिचय अवश्य पा सकते हैं।

मनुष्य जन्म हमारे उद्धार का एकमात्र अवसर होता है, मनुष्य जन्म में ही हमें सद्गुरु

रूप में ऐसे मार्गदर्शक का सहारा मिलता है जो कि हमें दुनिया की भूल भुलैयाँ से निकालकर उचित राह बताते हैं। गुरुदेव हमें इस संसार की भ्रम और माया रूपी मरीचिका से बाहर निकालते हैं, गुरुदेव प्रदत्त मंत्र रूपी संगीत ही हमारे जीवन का आधार है, इस मंत्र के निरंतर चिन्तन, मनन करने से ही हमारे अंदर विवेक जागृत होता है और गुरुदेव द्वारा बताए मार्ग के धुंधले दर्शन प्रारंभ हो जाते हैं।

प्रारंभिक अवस्था में सांसारिक बाधाओं के कारण आंतरिक एकाग्रता की दिव्य आभा का पूरा ज्ञान नहीं हो पाता, मगर हम इस परम सत्य को जानने में समर्थ हो जाते हैं कि हमारे अंदर कोई न कोई ऐसी वस्तु अवश्य है जो कि बुद्धि की पहुँच से परे तथा माया इन्द्रियों के भ्रमजाल से सर्वथा भिन्न है। यह हमारे अंदर उसी प्रकार छुपी हुई है जिस तरह लकडी के अंदर आग छुपी होती है मगर प्रयत्न करने पर युक्तिपूर्वक उसे प्रकट किया जा सकता है। समस्त रहस्य इस बात में छिपा हुआ है कि हम एक मन–एक चित्त होकर गुरुदेव के उपदेशों पर अमल करें। उसके पश्चात् गुरु और शिष्य का जो संबंध स्थापित होता है वह अभेद होता है, कोई भी सांसारिक बाधा उनके समक्ष नहीं टिक पाती। सच्ची भक्ति का वास्तविक अर्थ सच्ची श्रद्धा है। सद्गुरुदेव के साथ और उनके बताये मार्ग के साथ उतनी लगन और भक्ति भाव से जुड़ना कि मार्ग की सभी रुकावटें दूर हो जाए और कितनी ही बाधा आए मगर हमें इस मार्ग से विचलित न होने दें।

हवा में उड़ रहे कण के समान हम बिल्कुल निर्बल एवं असहाय हैं, हमें उचित मार्ग और उद्देश्य की समझ तभी मिलती है जब हमें गुरुदेव की कृपा दृष्टि मिले हम सब उनके दर के भिखारी है और उनसे दया की भीख माँगने पर ही उन की कृपा प्राप्त कर सकते हैं। जब वे करुणा सागर करुणा आर्द्र होकर हमारी पुकार सुन लेते हैं तो हमें सब कुछ प्रदान कर देते है। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के समस्त रहस्य हमारे समक्ष स्वतः ही प्रकट होते चले जाते हैं इस मार्ग का यथार्थ सत्य जानने के लिए हमें इस पथ का पथिक बनना पड़ता है, तभी हम इस परम सत्य को जानने में समर्थ हो सकते हैं।

जब हमें बाहर की दुनिया में कोई बात समझानी हो तो हम शब्दों या चेहरे के हाव भावों का प्रयोग करते हैं। मगर आन्तरिक मार्ग के अनुभव हमें अपने आप प्राप्त होते हैं परिणामस्वरूप इस मार्ग के बारे में हमारी सोचने की क्षमता बढ़ जाती है और इस मार्ग के बारे में बताने के सांसारिक उपाय अधूरे रह जाते हैं। इसका आशय यह है कि आंतरिक दृश्यों तथा अनुभवों से कोई इसे स्पष्ट करना चाहे तो भी वह अधूरा ही रहता है। इस मार्ग पर हम जितना आगे बढ़ते है उतना ही उसके अलौकिक आनंद का वर्णन कठिन होता है जैसे किसी भी व्यक्ति के बाहरी हाव–भावों को शब्दों में वर्णित करना कठिन होता है उसी

प्रकार आन्तरिक सूक्ष्म अनुभवों का वर्णन स्थूल शरीर को होने वाले अनुभवों से कहीं अधिक कठिन है। अलग–अलग संस्कारों और मनोवृत्तियों के कारण प्रत्येक अभ्यासी साधक को कुछ निजी अनुभव होते हैं। परमार्थिक उन्नति में एक बहुत बड़ी आश्चर्य की बात है कि तीव्र बुद्धि वाले लोगों की अपेक्षा भोले–भाले लोग जिन पर बुद्धि का अधिक दबाव नहीं है शीघ्र उन्नति करते हैं। क्योंकि भोले लोगों के मन में बुद्धि की दलीलों और तर्कों की अपेक्षा गुरुदेव का अद्‌भुत प्रेम समाहित होता है। उनको गुरुदेव का कोई भी वाक्य मिथ्या नहीं लगता गुरुदेव के प्रत्येक शब्द में कोई न कोई रहस्य मानकर उसका सदैव पालन करते हैं।

गुरुदेव प्रदत्त मंत्र से चित्त को एकाग्र करके जब हम अंधेरे पर्दे को, जो कि कई जन्मों से हमारे ऊपर पड़ा है, चीर कर आगे बढ़ते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो खिड़की खोलकर बाहर आए हों। सूर्य तथा चन्द्रमा के प्रकाश के बीच में से गुजरे हों। अपनी तीव्र भक्ति एवं लगन व अभ्यास के द्वारा अपने लक्ष्य तक पहुँचने का कार्य कुछ सीमा तक हमने आरंभ कर लिया हो। जैसे–जैसे हमारा चित्त अधिक प्रकाश की ओर जाता है वैसे–वैसे हमारी निष्ठा परिपक्व होती जाती है और हमारे अभ्यास की गति भी निरंतर बढ़ती जाती है। आनंद की अनुभूति होने लगती है। हम अपने लक्ष्य की ओर निरंतर अग्रसर होते हैं, उसके बाद हमें ज्ञान हो जाता है कि समय और स्थान, अँधेरे और प्रकाश भले बुरे की द्वैत जिस पर मन की मलिनताएँ चढ़ी हुई है केवल भ्रम है इस तरह हमारे चित्त से तेरे मेरे की द्वैत समाप्त हो जाती है।

जैसे–जैसे इस पथ पर हमारी उन्नति होती जाती है, संघर्ष कम हो जाता है, उन्नति आसान हो जाती है। संसार के जंजाल के मध्य मोह माया में लिप्त होने के कारण इस पथ पर चलने के लिए प्रारंभ में अधिक मेहनत की आवश्यकता पड़ती है। मगर कुछ ही दिनों के अभ्यास से सब कुछ आसान हो जाता है। हम शारीरिक स्तर पर मंत्र जाप से, मानसिक स्तर पर ध्यान से जितना अधिक जुड़ेंगे उतना ही हमारा अभ्यास दृढ़तम होता जाएगा और अन्त में हमारा गुरुदेव के साथ स्थायी संबंध कायम हो जाता है। अगर हमें हमारे मन को पकड़कर रखना है और इस पर कड़ी नजर रखनी है तो कभी इस भ्रम का शिकार नहीं होना चाहिए कि हम अपनी मंजिल तक पहुँच गए हैं, कई बार किसी बाहरी उत्तेजना या किसी अन्य कारण से हमें अत्यंत आनंद की अनुभूति होती है, मगर ऐसी अवस्था में हमारा अहंकार या बुद्धि की मलिनता हमें नीचे खींचने का प्रयत्न करती है। तब हमें सावधान रहने की अधिक आवश्यकता पड़ती है क्योंकि हम हमेशा के लिए तभी सुरक्षित हो सकते हैं जब हमारे अंतर में सद्‌गुरु से मिलाप होगा। अंतर में सद्‌गुरु से

मिलाप होने के उपरान्त हम कर्मों के जंजाल से परे हो जाते हैं उसके बाद जो कुछ भी होता है गुरुदेव की प्रेरणा से होता है हमें कुछ करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। क्योंकि हमारे मार्गदर्शक (गुरुदेव) हमें आगे का मार्ग स्वयं दिखलाते हैं। इतना ही नहीं आगे की यात्रा तो वो स्वयं प्रत्यक्ष रूप से हमारे समक्ष प्रकट होकर संपूर्ण करवाते हैं, गुरुदेव ही हमारे सच्चे साथी हैं इस आंतरिक यात्रा में हमारा तब तक साथ निभाते हैं जब तक कि हम अपने लक्ष्य को न प्राप्त कर लें।

गुरुदेव स्वयं ब्रह्म हैं, उनके वचनों का हमें सदैव पालन करना चाहिए, परम करुणार्णव सद्गुरुदेव हम सभी को बराबर प्रकाशार्जन करने को प्रोत्साहित करते रहते हैं, चलते फिरते, उठते–बैठते उन्हीं का स्मरण चिन्तन, अपने पथ पर अग्रसर होने की लगन व ध्यान की तत्परायणता यही सब तो उनकी प्रसन्नता का मूल कारण है और हमारे मन को प्रकाशित करने का मुल कारण भी यही है। शनैः शनैः मन को एकाग्र करने के उपरान्त हमारे मन में छाया अंधकार उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार अंधेरी गुफा में दीपक के प्रकाश से वहाँ के अंधकार का अस्तित्व ही नहीं रहता।

अतः हमें अपने आपको पूर्ण श्रद्धा व समर्पित भाव से गुरुदेव के बताए मार्ग पर निरंतर अग्रसर होते रहने का प्रयत्न करना चाहिए। यही हमारे मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

* * *

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुंभु पयोमुखम्।।

–हितोपदेश – ७६

पीठ पीछे काम को बिगाड़ने वाले और प्रत्यक्ष में मीठी बात बोलने वाले व्यक्ति को इस तरह से त्याग देना चाहिये जैसे विष से भरे हुए उस घड़े को त्याग दिया जाता है जिसमें केवल मुख पर ही दूध भरा हुआ होता है।

"योग का व्यापक संदेश"

–वेदव्रत द्विवेदी, (उमापुर)

अध्यात्म जगत के भास्कर का उदय तभी हो सकता है जब निर्मल और विशुद्ध ज्ञान की अरुणिमा हम अपने सद्गुरुदेव भगवान के उस परम तत्व के निज स्वरूप का बोध करें।

वास्तव में ज्ञान और ध्यान तथा मोक्ष के प्रदाता स्वयं गुरुदेव भगवान ही है। उस परम तत्व को जान लेना सर्व साधारण के वश की बात नहीं योग ही परा विद्या है। जिसके अधिष्ठाता स्वयं सद्गुरुदेव भगवान ही हुआ करते हैं। योग का पथिक व साधक वही हो सकता है जिसने अपना आपा चित्त, बुद्धि सब कुछ सद्गुरुदेव भगवान के चरणों में अर्पित कर दिया हो। दरअसल अज्ञानी बनकर किसी को अज्ञान के मार्ग पर चलने वाले के मसीहा तो हो सकते हैं, किन्तु एक सुसंस्कृति और समुन्नत वैदिक राष्ट्र का गठन नहीं कर सकते, इसके लिए तो आवश्यकता है आत्मज्ञान की और सच्ची अनुभूति की जो योग के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। प्राचीन काल की गुरुकुल प्रणाली इसी बात का प्रमाण है। आपसी प्रेम सौहार्द का वातावरण समाज में तभी विकसित हो सकता है जब योग परक शिक्षा–दीक्षा एवं संस्कार द्वारा बच्चों को विद्यालय एवं घर में गुरुजन एवं माता–पिता योग पर चलने के लिए प्रेरित करें।

भारत सरकार एवं प्रान्त की सरकारें इसके लिए अनुकूल वातावरण पैदा कर अनिवार्य विषय के रूप में पाठ्यक्रम में जोड़कर वैदिक प्रणाली की तरह एक भा +रत = भारत जिसका वास्तविक अर्थ भा माने प्रतिभा रत माने डूबा हुआ।

राष्ट्र और सिद्धान्त का निर्णायक कौन हो सकता है ?

जिसने वेद, उपनिषद, और पुराण तथा गीता का हृदयंगम तक नहीं किया वह भला सोचिये राष्ट्र को क्या दे सकता है ? इसके लिए योगाचार्यों सन्त महात्माओं द्वारा ही पथ प्रदर्शक के रूप में अपनी अहम् भूमिका अदा कर एक योग परक सशक्त राष्ट्र का गठन कर सकते हैं।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

(गीता ४/३८)

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही काल से कर्मयोग के द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने–आप ही आत्मा में पा लेता है।

जिस ज्ञान के अमृत सरोवर में स्नान करना चाहता हूँ उसके लिए सद्गुरु रूपी चरण कमल मानस सरोवर में अपने अहंकार को समूल सहित दग्ध करना होगा उसके लिए कितना आत्मबल और आत्मविश्वास के साथ– एक और सम्बल का सहारा चाहिए और वह है दृढशक्ति और पक्का इरादा जिसकी बुनियादी नींव इच्छा शक्ति और श्रद्धा पर ही टिकी हुई है।

सच्चे अर्थों में योग का जिज्ञासु भी वह ही है जिसने अपने आत्मबल द्वारा **"अहिर्निश सेवा महे"** निरन्तर सद्गुरुदेव भगवान का चिन्तन होता रहे। व्यथित एवं बोझिल मन को एकाग्र करने की चेष्टा तभी सार्थक हो सकती है जब बाह्य जगत अच्छा न लगे और हृदय से वैराग्य उत्पन्न होना शुरू हो जाय तब हमें समझना चाहिए कि योग में प्रवेश मिल गया। योग में प्रवेश का मतलब ही उस रुहानी ताकत से है जिसके मिल जाने से फिर किसी के सामने याचक बनकर भीख माँगने की जरूरत ही नहीं पडती। सद्गुरुदेव भगवान योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज इस युग के योगप्रणेता है। जब भी इस पावन धरती पर आपका अवतार हुआ तब–तब आपने योग की मशाल जलाकर इस सम्पूर्ण धरती को प्रकाशमान किया। आज भी अपने बच्चों का वे पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। आपने राष्ट्र के गौरव और सम्मान को ही नहीं अपितु विश्व को भी एक नई रोशनी प्रदान की।

मेरे योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जैसा योगी इस दुनियाँ तो क्या उस दुनियाँ में भी ना होगा। ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता तीनों जब एक विषयक हो जाते हैं तब शुरुआत होती है आत्मज्ञान की और आत्म ज्ञान के नींव रूपी पारस पत्थर मेरे सद्गुरु देव भगवान ही है। देखो ? आश्चर्य मत करना, मेरे महाप्रभु योग मार्तण्ड योग योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज, प्रत्येक युग के अवतारी महा भूमा महापुरुषों में हैं चाहे सतयुग, त्रेता, या द्वापर का समय रहा हो या फिर कलियुग का उन्होंने ही योग बल निर्माण चित्त द्वारा इस अवनि मण्डल पर '२२' बार अवतार लिया, जिसका प्रयोजन केवल यह था कि भूले भटके हुए जीवों का उद्धार करना सतयुग में विष्णु भगवान श्री सद्गुरु देव भगवान के रूप में अवतार लिया और अपने सद्शिष्य के कल्याण के लिए नारद जी को बोध कराया।

और इसी तरह त्रेता में भगवान श्रीराम चन्द जी ने सद्गुरु देव भगवान के रूप में अवतार लिया और अपने सद्शिष्यों के कल्याणार्थ हनुमान को बोध कराया।

और ठीक इसी तरह द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण चन्द जी ने अर्जुन को बोध कराया।

और इसी प्रकार से कलियुग में परम पितापरमेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जी ने सम्पूर्ण योग–ऐश्वर्य सर्व समर्थ सद् गुरुदेव भगवान के रूप में अवतरित होकर अपना निज स्वरूप प्रदान कर सद् शिष्य योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को योग कल्याणार्थ बोध कराया।

सादर जय गुरुदेव !

गुण देखने की वृत्ति

आचार्य श्री विनोबा

मनुष्य की दोषारोपण की वृत्ति को हम जानते है। वह दूसरे पर काल्पनिक दोषारोपण करता है और जब तक यह साबित नहीं होता कि उस मनुष्य में वे दोष नहीं है जब तक उसे दोषमुक्त नहीं मानता। वैसी ही दूसरी एक गुणारोपण की वृत्ति। गुणारोपण यानी गुण का आरोपण अर्थात् यह मानकर चलना कि सामने वाला मनुष्य भला ही है। जब तक इसके विरुद्ध कोई बात साबित नहीं होती, तब तक उसको भला गुणी ही मानना।

हम परिवार में एक दूसरे को संभाल लेते है, राष्ट्र के कारोबार में भी ऐसा ही होना चाहिए। दोषों को पेट में डालकर गुणों पर जोर देना चाहिए। जैसे परिवार में मनमुटावों को आपस में ही मिटाया जाता है, झगड़ों का शमन किया जाता है, वैसी ही वृत्ति बाहर के कार्य मे भी चाहिए। परिवार में शिक्षा छोटे पैमाने पर मिलती है, वही बाहर भी बड़े पैमाने पर मिलनी चाहिए। जैसे परिवार में व्यक्तिगत हार्दिक सम्बन्ध होते है, वैसे ही राष्ट्रीय व्यवहार मे भी होने चाहिए। परिवार में जिसको हम गुणवृत्ति मानते है, वह राष्ट्रीय व्यवहार में दुर्गुणवृत्ति कैसे होगी ? परिवार में उदारता, प्रेम, सहानुभूति और सहकार की जरूरत होती है, तो सामाजिक व्यवहार में भी इन गुणों की जरूरत है। जो न्याय परिवार में वही बाहर समाज में। जिस पद्धति से और वृत्ति से हम परिवार के प्रश्न हल करते है, उसी पद्धति और वृत्ति से दुनिया के प्रश्न हल करने होते है। सार्वजनिक सेवा और संस्था-संगठनों में इस वृत्ति का होना बहुत जरूरी है।

त्याग की वृत्ति

दूसरी बात है त्याग की। मनुष्य कितना त्याग कर सकता है ? इसका जवाब भी परिवार की तरफ देखकर ही मिलेगा। मनुष्य परिवार के लिए कितना त्याग करता है, इसका विचार करेंगे, तब इसका नाप मिलेगा कि मनुष्य ज्यादा से ज्यादा कितना त्याग कर सकता है। इस प्रकार इसका सूक्ष्म निरीक्षण करना कठिन है। परन्तु परिवार कुछ निश्चित त्याग की मांग करता ही है। पुश्त-दर-पुश्त से आये कुलधर्मों का ठीक तरह से पालन करना हो, जो गुण हमें पूर्वजों से मिले है, उनका ठीक तरह संवर्धन कर विकास करना हो, उन गुणों के विकास के द्वारा कुल की प्रतिष्ठा बढ़ानी हो, कुल की मर्यादा का रक्षण करना हो, परिवार का ठीक ढंग से संरक्षण और सम्वर्धन करना हो तो कुछ निश्चित त्याग की जरूरत होती ही है। गांधीजी ने राष्ट्र के लिए जिस त्याग की मांग की है, वह त्याग परिवार के इस त्याग की मात्रा से बहुत कम है। गांधीजी की मांग बहुत अल्प है। परिवार में कितना त्याग करना पड़ता है ? टालस्टाय ने कहा है कि मनुष्य अपने परिवार के लिए ईसा मसीह

से कहीं ज्यादा त्याग और तपस्या करता है।

परन्तु इस प्रकार इतनी गहराई में जाकर निरीक्षण करना शायद कुछ कठिन है। इसलिए इसे हम छोड़ दें। हम व्यापक दृष्टि में देखें। व्यापक दृष्टि यानी काल और स्थान से दूर रहकर देखना। हम पांच छः हजार मील दूर का देखेंगे। वैसे ही दो तीन हजार वर्ष पहले का देखेंगे। इन दोनों दृष्टि से हम देखेंगे कि मनुष्य–स्वभाव क्या है ? उसके त्याग की शक्ति कितनी है, त्याग की मर्यादा कितनी है।

बीस साल पहले योरुप में महायुद्ध हुआ था। वह चार साल चला। अनन्त हिसाबी और व्यवहारी वृत्ति के लोगों ने जिनको स्वार्थी, सर्व साधारण मनुष्य स्वभाव का ज्ञान था, उनको चलाया था। जर्मनी की जन–संख्या का छठवां हिस्सा उस युद्ध में शरीक हुआ था, अर्थात् मरने के लिए तैयार हुआ था। इतना त्याग उन लोगों ने किया तो क्या यह त्याग मनुष्य स्वभाव के अनुकूल नहीं है। या जर्मनी के लोग दैवी स्वभाव के हैं ? वे भी मनुष्य ही हैं। फिर भी राष्ट्र के लिए इतना त्याग वे कर सके। यह त्याग अगर मनुष्य स्वभाव के लायक है, तो महात्मा गांधी राष्ट्र के लिए जिस त्याग की मांग कर रहे हैं, उसे मनुष्य की त्यागशक्ति के बाहर का क्यों माना जाता है ? एक ओर हम हमारी संस्कृति का अभिमान रखते हैं। भारतीय संस्कृति महान है, प्राचीन है। हमारे यहाँ महान ऋषि–मुनि हो गये, साधु सन्त हो गये, वीर पुरुष हो गये, यहाँ यज्ञ और संयम का महत्व है, आदि बातें हम नित्य करते रहते हैं। हम मानते हैं कि हमारी संस्कृति उदार, सुन्दर, यज्ञ–प्रणव, स्वर्गीय है। लेकिन जब त्याग करने की बात आती है तो वह हमें मनुष्य–शक्ति के बाहर की बात लगने लगती है। जर्मनी के लोगों ने जो त्याग किया था वह फिर भी किसी उदात्त ध्येय के लिए नहीं था। उनका ध्येय लोभमूलक था। गांधी जी हम लोगों से जिस त्याग की मांग कर रहे हैं, वह स्वातन्त्र्य–प्राप्ति के लिए है और वह भी सत्य, अहिंसा के मार्ग पर चलकर करना है। यह तो अधिक प्रेरणादायी है। तो गांधीजी ने समाज से जो अपेक्षा रखी है, मनुष्य–स्वभाव के खिलाफ नहीं है।

मनुष्य की त्याग–शक्ति का नाप हमने पांच–छः हजार मील दूर का देखकर निकाला, अब दो तीन हजार वर्ष पीछे मुड़कर देखेंगे।

मनुष्य के स्वभाव की पहचान

जिन्होंने हिन्दू–धर्म की रचना की, उन्होंने यह सोचा कि समाज में औसतन चार मनुष्यों के पीछे एक वानप्रस्थ मनुष्य होना चाहिए। चार में से एक देश की, समाज की सेवा करने वाला हो। हमारी सभी स्मृतियाँ कहती हैं कि वानप्रस्थ उत्तम शिक्षक होता है। राष्ट्र की नई पीढ़ी तैयार करने के लिए त्यागी, अनुभवी, तपस्वी लोग ही चाहिए। इसलिए स्मृतिकारों ने वानप्रस्थ–संस्था का निर्माण किया। समाज का चौथा हिस्सा वानप्रस्थ हो, ऐसी उनकी योजना थी। किसी समय इस योजना पर अमल होता होगा। किसी समय

समाज में ऐसी स्थिति मौजूद थी। किसी समय मनुष्य स्वभाव की यह परख थी कि चार में से एक मनुष्य वानप्रस्थी बनता है। समाज का पच्चीसवाँ हिस्सा वानप्रस्थ रहकर समाज की सेवा करेगा, ऐसा विश्वास धर्म की रचना करने वालों को था। धर्म–शास्त्र की रचना करने वाले ऋषि मनुष्य स्वभाव की खींचातानी करने वाले अक्लशून्य लोग नहीं थे। धर्मरचना काव्य नहीं होती। कल्पना का पुलावा नहीं होता। धर्म की रचना इसलिए की जाती है कि सब लोग उस पर अमल करें। तत्व–ज्ञान या काव्य की रचना करना एक बात है और मनुष्य का दैनिक व्यवहार व्यवस्थित करने के शास्त्र की रचना करना अलग बात है। धर्म सबके लिए होता है। उसके व्यवहार में लागू हो, सबके आचरण में आये इसलिए होता है। ये धर्म–रचनाकार मनुष्य स्वभाव को पहचानते थे। सबको वे यह नहीं कह रहे है कि त्रिभुवन को तुच्छ, शून्य मानकर ब्रह्म नन्द मे रममाण हो जाओ। संसार में कैसे रहना चाहिए, दुनिया में कैसा व्यवहार करें, इसकी बात वे करते हैं, जिन्होंने मनुष्य स्वभाव की परीक्षा कर ली थी, ऐसे धर्म–शास्त्रकारों ने एक संस्था का निर्माण किया, जिसमें समाज का पच्चीसवाँ हिस्सा वानप्रस्थ होगा। वानप्रस्थ यानी देश सेवक ! मनुष्य स्वभाव को ध्यान में रखकर व्यावहारिक स्तर पर धर्म–शास्त्रकारों ने आपस में यह अपेक्षा रखी कि समाज का पच्चीसवां हिस्सा अनुभवी, त्यागी सेवक के रूप में समाज को मिले।

फल से पेड़ की परीक्षा

हम हमारे इतिहास का खूब संशोधन करते है, रक्षण करते हैं। लेकिन क्या पूर्वजों के पराक्रम के विषय में कागजात सँभालकर रखना ही इतिहास–रक्षण है ? इतिहास–रक्षण का सर्वोत्तम मार्ग है आज का इतिहास उज्जवल करना। विदेशी इतिहासकार आप के पूर्वजों को नालायक कहते हैं तो आप क्षुब्ध हो जाते हैं। लेकिन विदेशी इतिहासकार आपके आज के व्यवहार से–वर्तमान से आपके भूतकाल की परीक्षा करेगा। फल को देखकर वृक्ष की परीक्षा की जाती है। फल यदि कड़वा हो तो चखने वाला यही मानेगा कि पेड़ भी कड़ुवा है। केवल पूर्वजों के गुणों का बखान करने से आपका इतिहास साबित नहीं होगा, उन गुणों पर अमल करना ही उसका सही सबूत है। आप मुख से तो बोलेंगे– नायं हन्ति, न हन्यते परन्तु प्रत्यक्ष कृति होगी–'अयं हन्ति, अयं हन्यते' परन्तु की, तो–'नायं हन्ति, न हन्येत' सिद्ध नहीं होगा। जब तक आप आज का इतिहास नहीं बदलते, तब तक आप भले ही भूतकाल के कागजात या अन्य सबूत सँभालकर रखें, आपके इतिहास की उज्जवलता सिद्ध नहीं होगी। अगर आपके आज के व्यवहार में शुद्धता, उज्जवलता होगी भरपूर त्याग होगा, ध्येय–निष्ठा होगी तो भले ही आपके पुराने सबके सब कागजात नष्ट हो जायें। मराठा, राजपूत आदि के पराक्रम के, ऋग्वेद के सब कागज फट जायें, अक्षर–अक्षर उड़ जायें, फिर भी आपका पिछला इतिहास दुनिया में उज्जवल साबित होगा। तब दुनिया निशंकता से कहेगी कि यह त्यागी, पराक्रमी, उज्ज्वल परम्परा का राष्ट्र है। वर्तमान–रक्षा

से इतिहास–रक्षा होती है।

पानी का भ्रातृभाव

मनुष्य केवल भोगी होकर कैसे चलेगा ? उसे चाहिये कि वह आसपास की परिस्थिति का विचार करे। उसकी तो पानी के जैसा बनाना चाहिये। पानी का स्वभाव कैसा है ? कुएँ मे से बाल्टी भर पानी खींच लीजिये, वहाँ गढ़ा नहीं होगा, आसपास का पानी उस खाली जगह को भर देने के लिए दौड़कार आयेगा। पलभर में उसकी सतह समान हो जायेगी। जब ऊपर आना होगा, तब पूरा पानी ऊपर आयेगा, नीचे जाना हो तो पूरा नीचे जायेगा। एक की कमी वह सबकी कमी, एक की उन्नति वह सबकी उन्नति, पानी का यह सिद्धान्त है। उससे उल्टी बात ज्वार की है। ज्वार के ढेर से टोकना भीर ज्वार उठा लें तो वहाँ गढ़ा होगा। उसे भरने के लिए चन्द महात्मा दाने दौड़े आयेंगे उस गढ़े में कूद पड़ें, लेकिन बाकी हठीले, उद्दंड दाने ज्यों के त्यों अपनी–अपनी जगह पर ही रहेंगे, गढ़ा भरने आयेंगे नहीं। पानी का ऐसा नहीं है, उसमें संवेदना है, टछपटाहट है। कहीं भी छोटा–सा ही गढ़ा क्यों न हो, उसे भर देने के लिए सभी आगे आयेंगे। पानी में ऐसा विलक्षण भ्रातृभाव है।

मनुष्य स्वभाव पानी के जैसा हो दूसरे का दुःख दूर करने के लिए उसके दिल में छटपटाहट होनी चाहिए। समय पर दौड़कर जाने की कृति उसको करनी चाहिए। समाज में आसपास के गढे भर देने के लिए तीव्रता होनी चाहिए, दौड़कर जाने की वृत्ति होनी चाहिए। लेकिन क्या आज यह तीव्रता, संवेदनशीलता हममें है ? आज तो हर ज्वार के हठीले दानों जैसे बन गये है। दूर से मजा देखते रहते हैं। कुछ जरूर छटपटायेंगे और दौड़ेंगे, लेकिन आम लोग सिर्फ देखते रहेंगे।

इस पर एक आक्षेप आता है कि परिस्थिति ही बदल गई है। सार्वजनिक सेवा में योगदान देने जैसी हालत नहीं रही, कठिन दिन आये है। व्यापारी का व्यापार चलता नहीं, किसान के खेत में फसल आती नहीं, आती है तो योग्य भाव मिलता नहीं, नौकरी पेशे में तो रस ही नहीं है, तो कैसे समाजसेवा में मदद करेंगे ? परन्तु मेरे पास इसका जवाब है।

आपके घर में आपके पाँच बच्चे हैं। उनकी व्यवस्था आप इस हालत में भी करते ही है। आप सब बांटकर खाते हैं। जो भी और जितना भी कर सकते है, सभी बच्चों के लिए करते है। मेरा कहना है कि सार्वजनिक सेवा को आप आपका छठा बच्चा मान लीजिये और इसके हिस्से का इसको देते जाइये। समाज–सेवा परिवार का अंग ही है। परिवार के हिसाब पोथी में घर खर्च के अलग–अलग खाते होते हैं। खेती खाता, मवेशी खाता आदि वैसे ही यह सेवा खाता। यह घर खर्च का ही एक खाता है। घर के अलग अलग कामों पर हम खर्च करते है वैसे ही इस पर भी करना चाहिए। कहा जाता है जो न्याय घर को वही न्याय बाहर !

❊ ❊ ❊

योगः कर्मसु कौशलम्

लेखक–महामहोपाध्या डा० श्रीगंगानाथ जी झा

'योग' के विषय को लोगों ने ऐसा जटिल बना और समझ रक्खा है कि इसका नाम ही भयंकर हो गया है। इसका कारण यह है कि इधर कुछ समय से 'योग' पद से लोग 'हठयोग'–केवल आसन–मुद्रा को समझने लगे हैं। और आसन–मुद्रादि एक तो स्वयं जटिल विषय हैं, दूसरे इन शारीरिक क्रियाओं से आध्यात्मिक लाभ क्या और कहाँ तक हो सकता है सो भी समझना कठिन है। बात तो यों है कि अभ्यासात्मक योग के सर्वांग तत्वों का समझना गुरु के बिना कठिन है। परन्तु थोड़ा–सा विचार करने से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि हठयोग यद्यपि योग का अंग अवश्य है पर तो भी है 'योग' का अंग ही, स्वयं 'योग' नहीं, अर्थात् योग का साधनमात्र है, और सो भी प्रधान नहीं।

ऐसे 'अंग' योग के आठ कहे गये हैं–(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, (८) समाधि। इनमें पहले पाँच योग के 'बाह्य अंग' हैं, बाकी तीन 'अन्तरंग' हैं (योगभाष्य ३। ७)। ये तीन हैं धारणा, ध्यान, समाधि। ये ही तीन प्रधान हैं। कारण यह है कि ये ही तीन प्रक्रियाएँ हैं जिनका उपयोग सब कार्यों में होता है। जिस किसी ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा हो उस ज्ञान के विषय में जब ये तीनों लगायी जाती हैं तभी उचित ज्ञान प्राप्त होता है। जब तक ज्ञेय पदार्थ पर मन एकाग्ररूपेण नहीं लगाया जाता तब तक उसका ज्ञान असम्भव है। इसलिये प्रथम सीढ़ी हुई यही एकाग्रता जिसे 'धारणा' कहा है (सू० ३। १)। इसके बाद मन जब लगातार बहुत काल तक इसी तरह एकाग्र रहे तो यह हुआ 'ध्यान' (सू० ३। २)। और जब मन इस ध्यान में इस तरह मग्न हो गया कि उसका ध्येय पदार्थ में लय हो गया तो यही हुई 'समाधि' (सू० ३। ३)। किसी कार्य के सम्पन्न होने में इन तीनों की आवश्यकता होती है। यह केवल आध्यात्मिक अभ्यास या ज्ञान के ही लिये आवश्यक नहीं है, कार्य मात्र के लिये आवश्यक है। कोई भी कार्य हो, जब तक उसमें मन नहीं लगाया जाता, कार्य सिद्ध नहीं होता। इसी 'मन लगाने' को 'धारणा–ध्यानसमाधि' कहते हैं।

ये तीनों एक ही प्रक्रिया के अंग हैं। इसी से इन तीनों का साधारण एक नाम 'संयम' कहा गया है (सू० ३ । ४)। इसी 'संयम' (अर्थात् धारणा–ध्यान–समाधि) से ज्ञान की शुद्धि होती है।

इन योग सूत्रोक्त उपदेशों को जब हम मामूली कामों में लगाते हैं और इनके द्वारा सफलता प्राप्त करते हैं तब हमको मानना पड़ता है कि 'योग' का सबसे उत्कृष्ट और उपयोगी लक्षण जो श्रीभगवान् ने कहा है वही है–

'योगः कर्मसु कौशलम्'।

इस 'योग' के अभ्यास के लिये प्रत्येक मनुष्य सदा तैयार रहता है। 'गुरु' मिलें तब तो योगाभ्यास करें'–ऐसे आलस्य के साधन सभी निर्मूल हैं। यों कोई कर्तव्य सामने आ जाय उसमें संयम (अर्थात् धारणा–ध्यान–समाधि) पूर्वक लग जाना ही 'योग' है। इसमें यदि कोई की स्वार्थ–कामना हुई तो यह योग अधम श्रेणी का हुआ, और यदि निष्काम है–'कर्तव्य'–बुद्धि से किया गया है और फल जो कुछ हो सो ईश्वर को अर्पित है तो यही 'योग' उच्च कोटि का हुआ। जब अपने सभी काम इसी रीति से किये जाते हैं तो वही आदमी जीवन्मुक्त कहलाता है।

कैसे सुगम मार्ग है, लोगों ने दुर्गम बना रक्खा है। पर मन का 'लाग' चाहिये–तत्परता, तन्मयता। कठिन नहीं है–दूसरे किसी की आवश्यकता नहीं है–अपने हाथ का खेल है। परश्रद्धा और साहस चाहिये।

इसमें शास्त्रार्थ या तर्क–वितर्क की जरूरत नहीं है। इसको कोई भी आदमी किसी सामान्य कार्य के प्रति इस प्रक्रिया की परीक्षा करके स्वयं देख सकता है। पर आदि में श्रद्धा और आगे चलकर साहस की अपेक्षा होगी, जिससे प्रक्रिया अपनी चरम कोटि तक पहुँच जाय।

❋❋❋

आलस्य हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति।।

–भर्तृहरि नीतिशतक

आलस्य मनुष्य के शरीर में रहने वाला घोर शत्रु है और उद्योग के समान उनका कोई बन्धु नहीं है क्योंकि उद्योग करने से मनुष्य के पास दुःख और अभाव नहीं आते।

हठयोग

ले. आचार्य गोपीनाथ जी

हठयोग के आदि आचार्य कौन थे, यह बतलाना तो बहुत कठिन है। हमारे भारतवर्षीय आचार्यों का यह सिद्धान्त है कि सभी शास्त्रों की प्रथम प्रवृत्ति परमेश्वर से ही होती है। इस कारण हठयोग भी ईश्वर प्रोक्त कहा जाता है। हठयोगी कहा करते हैं कि आदिनाथ श्रीशिवजी ही हठयोग के प्रवर्तक हैं। जिस विचित्र उपाय से मत्स्येन्द्र नाथ ने इस विद्या को प्राप्त किया था उसका ऐतिहासिक मूल्य कितना है, यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, इस सम्बन्ध में एक दन्तकथा हठयोग के बहुत से ग्रन्थों में मिलती है। मत्स्येन्द्रनाथ की तरह गोरखनाथ, चर्पटि, जलन्धर, कनेड़ी, चतुरंगी, विमारनाथ आदि नाथ–सम्प्रदाय के आचार्यों ने हठयोग में निष्णात होकर संसार में इसका प्रचार किया था। इस सम्प्रदाय के इतिहास तथा शास्त्र की आलोचना करने पर हठविज्ञान की बहुत–सी अवश्य जानने योग्य बातें मालूम हो सकती हैं। गोरक्षशतक, गोरक्षसंहिता, सिद्ध–सिद्धान्तपद्धति, सिद्ध–सिद्धान्तसंग्रह, गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह, अमनस्क, योगबीज, हठयोगप्रदीपिका, हठतत्वकौमुदी, घेरण्डसंहिता, निरञ्जनपुराण आदि बहुत–से साम्प्रदायिक ग्रन्थ आज भी मिलते हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ के पूर्व भी हठयोग का प्रचलन था, इसमें सन्देह नहीं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में मार्कण्डेय मुनि इस योग के साधक थे।

द्विधा हठः स्यादेकस्तु गोरक्षादिसुसाधकैः।
अन्यो मृकण्डपुत्राद्यैः साधितो हठसंज्ञकः।।

गोरक्षोपदिष्ट हठयोग के छः अंग हैं–इसमें यम और नियम ग्रहण नहीं किये जाते। परन्तु मार्कण्डेय अष्टांग हठयोग के पक्षपाती थे। योगतत्व–उपनिषद् में भी हठयोग के आठ प्रकार के अंग बतलाये गये हैं।

हठयोग की पूर्ण परिणति राजयोग है। पातञ्जलदर्शन में असम्प्रज्ञात समाधि के नाम से इसी का वर्णन किया गया है। हठयोग की नियमित साधना के द्वारा राजयोग की सिद्धि होती है, इसी कारण आचार्यगण हठयोग का राजयोग के सोपान के रूप में वर्णन किया करते हैं। इस राजयोग के प्रभाव से ही साधनाशील जीव काल के पराक्रम से छुटकारा पाने में समर्थ होता है। हठयोग प्रदीपिका के मतानुसार समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्व, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरञ्जन, जीवन्मुक्ति, सहज, तुरीय–ये सब राजयोग के नामान्तर हैं। स्वामी आत्माराम ने स्पष्ट ही कहा है कि कुम्भक द्वारा प्राण की गति रुद्ध हो जाने पर चित्त निरालम्ब हो जाता है। ब्रह्मानन्द ने भी अपनी टीका में स्पष्ट लिखा है कि जिस समय सम्प्रज्ञात समाधि के बाद ब्रह्माकार स्थिति का उदय होता है उस समय पर–वैराग्य धारण करके चित्त को सम्यक् प्रकार से निरुद्ध करना जरूरी है। इससे यह स्पष्ट ही समझ में आ सकता है कि हठयोग से स्वभावतः राजयोग का विकास होता है।

देहशुद्धि हठयोग का अव्यवहित उद्देश्य है। योगियों की पारिभाषिक भाषा में यह घटशुद्धि के नाम से विख्यात है। घेरण्डसंहिता का मत है कि हठशास्त्रोक्त धौति, वस्ति, नेति,

त्राटक, नौलि एवं कपालभाति—इस षट्कर्म द्वारा देह की शुद्धि होती है। देह की दृढ़ता और स्थिरता आसन और मुद्रा का अभ्यास करने से सिद्ध होती है। तथा प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि के द्वारा क्रमशः दैहिक धीरता, लघुता, आत्मप्रत्यक्ष तथा निर्लेपता सुसम्पन्न होती है। अनेक आचार्य आसन, प्राणायाम अथवा कुम्भक, मुद्रा का करण तथा नादानुसन्धान—इन चार को हठयोग का प्रधान प्रतिपाद्य विषय कहते हैं। इनमें आसन का अभ्यास विधिवत् करने से देह की स्थिरता, निरोगता तथा लघुता सम्पन्न होती है। **'आसनेन रजो हन्ति'**—यह सिद्धान्त योगिसम्प्रदाय में अत्यन्त प्रसिद्ध है। दीर्घ काल तक विधि के साथ आसन का अभ्यास करने से रजोगुणजनित देह की चंचलता और मन अस्थिरता दूर हो जाती है। रोग विक्षेपका एक प्रधान कारण है—आसन के अभ्यास से उसकी भी निवृत्ति हो जाती है। इस अभ्यास से तमोगुण की क्रिया से उत्पन्न देह का भारीपन भी दूर होता है। देह में सात्विक तेज की वृद्धि होने से तमोगुण का ह्रास होता है स्वभावतः ही देह हलकी हो जाती है। बार-बार अभ्यास करके आसन को स्थिर कर लेने पर प्राणायाम की क्रिया सहज साध्य हो जाती है। परन्तु नाड़ी-चक्र नाना प्रकार से आच्छन्न रहने के कारण वायु सुषुम्ना-मार्ग में प्रवेश नहीं कर सकती। इसीलिये प्राण-संग्रह के पहले नाड़ी-शोधन की आवश्यकता होती है। नाड़ी विशुद्ध हुए बिना उन्मनीभाव अथवा मनोनिवृत्ति की कोई आशा नहीं रहती। विधिपूर्वक प्राणायाम करने से सुषुम्नानाड़ी के अन्दर का समस्त मल नष्ट हो जाता है। शाण्डिल्य उपनिषद् के मतानुसार नाड़ीशोधन-प्राणायाम कई महीने तक नित्य दो बार करना चाहिये। देह की कृशता, कान्ति, इच्छानुसार वायुधारण करने का सामर्थ्य, अग्निवृद्धि, नाद की अभिव्यक्ति और आरोग्यता—ये सब लक्षण जब क्रमशः आविर्भूत हो जायें तब समझना चाहिये कि सब नाड़ियाँ शुद्ध हो गयी हैं। त्रिशिखिब्राह्मण-उपनिषद् में लिखा है कि यम, नियम और आसन सिद्ध हुए बिना प्राणायाम यथार्थरूप में नहीं किया जा सकता। अतएव उस अवस्था में नाड़ी-शुद्धि की चेष्टा करना अनुचित है। हठाचार्यों का कहना है कि सब साधकों के लिये षट्कर्म की आवश्यकता नहीं होती। वायु, पित्त या कफ, इन तीनों दोषों में से किसी एक या दो की अधिकता होने पर षट्कर्म की सहायता लेना आवश्यक है। घटशुद्धि की तरह स्थूलता का नाश इत्यादि भी हठयोग का एक अव्यवहित फल है। याज्ञवल्क्य प्रभृति आचार्य कहते हैं कि जब एकमात्र प्राणायाम के द्वारा ही समस्त मल की निवृत्ति हो जाती है तब षट्कर्म की कोई विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

मुद्रासाधन का उद्देश्य यह है कि इससे ब्रह्मद्वार या सुषुम्ना-मुख से निद्रिता कुलकुण्डलिनी जाग्रत होकर ऊपर की ओर उठती है। कुण्डलिनी के जागने पर चक्र और ग्रन्थि सबका भेदन होता है, प्राण अनायास सुषुम्ना में प्रवेश करता है, चित्त निरालम्ब होता है और मृत्युभय छूट जाता है। आधारशक्तिरूपा कुण्डलिनी समस्त योगाभ्यास का मूल अवलम्ब है। मुद्रा आठ प्रकार की है और मुद्रा के अभ्यास का फल है अष्टैश्वर्य-प्राप्ति।

❊❊❊

प्रभुजी के अनन्य कृपापात्र पं० रूपचंद शास्त्री का स्वर्गवास

राजीव कुमार अम्ब, जिला ऊना (हिमाचल प्रदेश)

मेरे पूज्य स्व० पिताजी ८ जनवरी २००६ को कृपानिधान दादा गुरु योग–योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज जी अपार शक्ति में लीन हो गये। ५ जनवरी सन् १९३५ ई० में साधारण आचार्य ब्राह्मण मंडी हिमाचल प्रदेश में जन्मे स्व. पं० रूपचन्द शास्त्री जी को प्रभुजी में अनन्य श्रद्धा थी। जब पिताजी अमृतसर छहरटा समीप गागरमल पाठशाला में अध्ययन कर रहे थे तो गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से उनकी भेंट हुई थी। उस कारण वह आजीवन श्रवण, मनन, चिन्तन करते हुये मुझे योग–दीक्षा के लिये प्रेरित करते रहते थे। हालांकि स्वयं पिताजी योग दीक्षित न होते हुये भी षट्चक्र भेदन की प्रक्रिया का अलौकिक प्रसंग सुनाते रहते थे। गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सन् १९८१ में जब पं० रामचन्द्र कालिया के चंडीगढ़ योगशिविर में पधारे तो पिताजी ने वहां पर बड़ी श्रद्धा से मेरी योगदीक्षा पूर्ण करवाई थी। तदुपरान्त ज्योतिष शास्त्र के मर्म को विज्ञ करने वाले पिता श्री ने प्रभुजी की अपार कृपा से कई दीन–जनों का उद्धार भी किया। पिताजी सरकारी सेवा में बतौर शास्त्री अध्यापक रहते आयुर्वेद व ज्योतिष–कर्मकांड के विद्वान थे। प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अलौकिक स्वरूप का हर समय मनन–चिन्तन उनकी दिनचर्या में सम्मिलित था।

"योग बल ही सर्वश्रेष्ठ बल है" वह सदैव कहा करते थे। "राजीव ! अपने को योग–परायण बनाओ"। वह कई बार गुरुदेव श्रीचन्द्रमोहन जी महाराज के होते हुये मुझे श्री सिद्ध गुफा सवाई लेकर आये।

उन्हें तीनों बंध उड्डयान बंध, मूल बंध, जालन्धर बंध आदि की महारत सिद्ध थी। श्री प्रभुजी की कृपा से वह जब मेरे नूतन निवास अम्ब जिला ऊना हिमाचल प्रदेश में १५ अगस्त २००५ को पधारे तो सं० २०६२ की जंत्री (पंचांग) में निशान लगाकर बता गये कि राजीव जनवरी २००६ में अगर मैं न बचा तो मुझे १० दिन के भीतर श्री गंगा जी हरिद्वार छोड़ आना। उनकी अन्तिम इच्छा मैंने अक्षरशः पूर्ण की है। श्री सिद्धयोग के अंकों का लगातार स्मरण करते हुये उन्होंने कई दिव्य घटनाओं का वर्णन किया था। प्रभुजी ने उनको मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया है।

कालजयी श्री महाप्रभु जी

त्रिभुवन नाथ मिश्र (लखनऊ)

हे राम लाल प्रभु योगेश्वर तुमको मेरा शत् शत् प्रणाम।
हे सिद्ध गुफा के सिद्धेश्वर तुमको मेरा शत् शत् प्रणाम।।

पंजाब प्रान्त में जन्म लिया नेपाल देश में वास किया।
भक्तों के उजड़े हृदय भवन में तेरा ही है अटल धाम।। हे राम०।।

तुम शीश गिरी के हो वासी फिर भी घट-घट के अविनाशी।
तुम चन्द्र मोहन का रूप धरे, हे कालजयी तुमको प्रणाम।। हे राम०।।

मैं याचक हूँ तेरे दर का, तू दाता है सारे जग का।
क्षण में मुक्ति देने वाले, हे सिद्ध संत तुमको प्रणाम।। हे राम०।।

मुझ क्रूर कुटिल कुविचारी को, कामी लोलुप व्यभिचारी को।।
अपनी शरणागति में ले लो, तुम हो परब्रह्म तुमको प्रणाम।। हे राम०।।

मुझको भी दे दो वह शुचिता जिससे भव बन्धन हो कटता।
"त्रिभुवन" के पाप दहन कर दो, हे काम दहन तुमको प्रणाम।। हे राम०।।

❊ ❊ ❊

शोक संवेदना

—यह सूचना देते हुये दुःख हो रहा है कि श्री दुष्यन्त सिंह सिसोदिया (रि० जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट) का ४ मार्च को आगरा में देहावसान हो गया है। वे श्री गुरुदेव के अनन्य भक्तों में से एक थे। उनके परिवार में दिनेश सिसोदिया आदि पुत्र-पौत्र हैं। श्री प्रभुजी उनके दुःखी मन को शान्ति दें। सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

—श्री प्रो० विष्णु दत्त शर्मा मुम्बई (पौवई) में आई. आई. टी. में प्रोफेसर हैं। अभी मार्च प्रथम सप्ताह में ही उनके पिता का आगरा में ही देहावसान हुआ है। वे लगभग ७८ वर्ष के थे। सिद्धयोग परिवार दुःखी परिवार को अपनी दुःख संवेदना प्रेषित कर रहा है। श्री प्रभु जी उन्हें सद्गति दें, यही श्री प्रभुजी से प्रार्थना है।

आय-व्यय का विवरण वर्ष-38

आय		व्यय	
(अ) ग्राहक शुल्क		(1) प्रिंटिंग प्रेस	
(1) वार्षिक शुल्क	90813-00	छपाई व कागज	97555-00
(2) आजीवन शुल्क	21600-00	(2) डाक टिकट आदि	8404-00
(ब) सहयोग राशि		(3) कम्प्यूटर से पता	
(1) प्रेम तिवारी, लखित्तपुर	1000-00	छपवाने का खर्च	1126-00
(2) जगदीश गुप्ता, कालेभी	1100-00	(4) कार्यालय स्टेशनरी पैन आदि	750-00
(3) दु॰॰ सेदक पांडे, बैतूल	201-00	(5) वर्ष 39 विशेषांक के	
(4) उमा वाजपेयी, कानपुर	201-00	लिए अग्रिम	7000-00
(5) हुलासीराम वाजपेयी, कानपुर	6400-00	(6) आजीवन शुल्क के	
(6) नीलकंठ एन्टरप्राइजेज,		लिए FDR	70000-00
फतेहाबाद	1100-00		184835-00
(7) डा० अविरुद्ध प्रधान, गाजीपुर	2500-00		
(8) रवि शंकर शर्मा, लुधियाना	1000-00		
(9) जगदीश प्रसाद गुप्ता, कालभी	5000-00		
(10) एस. गुप्ता–सोलन (हि०प्र०)	501-00		
(11) राजकुमार गुप्ता, बच्चकूला	501-00		
(12) राजेन्द्र महाजन, घंटीगढ़	1001-00		
(13) सुभाष चंद गुप्ता, गोहाना	1000-00		
(14) सचिन शर्मा, जयपुर	501-00		
(15) जयकरण, धनबाद	201-00		
(16) उमाशंकर, कालभी	200-00		
(स) पिछला शेष	23132-00		
(द) वर्ष 2004-05 में			
वर्ष 05-06 के लिए			
दिया गया एडवांस रकम	13000-00		
	170952-00		
बैंक द्वारा प्राप्त राशि			
बैंक का सेविंग ब्याज	14386-00	शेष राशि (रोकड़)	503-00
योग–	185338-00	योग–	185338-00

श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र

श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर)

का

यौगिक सत्साहित्य

पुस्तक का नाम	मूल्य	पुस्तक का नाम	मूल्य
1. योग सिद्धान्त, भाग–1	रु. 100.00	22. योगेश्वर चरित्रमाला	रु. 5.00
2. योग सिद्धान्त, भाग–2	रु. 100.00	23. सर्वसमर्थ गुरुदेव	रु. 7.00
3. मेरी निजानुभूतियाँ	रु. 10.00	24. अद्भुत महायोगी	रु. 10.00
4. भोग–रोग–योग	रु. 10.00	25. सद्गुरु संकीर्तन भजनमाला	रु. 5.00
5. जीवन तत्व (बड़ा)	रु. 15.00	26. योग अमृत भजनावली	रु. 5.00
6. जीवन तत्व (छोटा)	रु. 5.00	27. दीदी के भजन	रु. 5.00
7. ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी	रु. 10.00	28. मेरा सवाँई आगमन	रु. 7.00
8. योगिराज मुल्खराज जी	रु. 10.00	29. सवाँई के चमत्कार	रु. 10.00
9. प्रभुजी की स्वहस्तलिखित कथायें	रु. 20.00	30. अध्यात्म भजनावली–1	रु. 5.00
		31. अध्यात्म भजनावली–2	रु. 5.00
10. मन की एकाग्रता के साधन	रु. 7.00	32. अध्यात्म भजनावली–3	रु. 5.00
11. आठ योगी	रु. 10.00	33. अध्यात्म भजनावली–4	रु. 5.00
12. योग क्यों – कैसे	रु. 7.00	34. अध्यात्म भजनावली–5	रु. 5.00
13. गुरु गीता	रु. 10.00	35. Life Force	रु. 10.00
14. योगी की अतुलित शक्ति	रु. 7.00	36. योगासन चित्रपट	रु. 10.00
15. सुबा संगीत	रु. 5.00	37. योगासन चित्रपट (छोटा)	रु. 5.00
16. योग क्या ?	रु. 5.00	38. महायोगी की लोकयात्रा	रु. 100.00
17. यम–नियम	रु. 7.00	39. गुरुदेव वचनामृत (तीन खण्डों में)	रु. 100.00
18. यौगिक षट्कर्म	रु. 5.00		
19. सचित्र योगासन	रु. 20.00	40. सद्गुरु कृपालीला, भाग–1	रु. 35.00
20. समाधिस्था योगनियाँ	रु. 10.00	41. सद्गुरु कृपालीला, भाग–2	रु. 40.00
21. योग समायण	रु. 20.00	42. चरणोदक	रु. 10.00

उपरोक्त पुस्तकें आश्रम पर स्वयं आकर अथवा डाक द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं।
डाक एवं पैकिंग खर्च पाठकों को स्वयं वहन करना होगा। -- व्यवस्थापक

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/06-08

APRIL 2006

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
एकमात्र हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/श्रीमती _____

_____

_____

_____

□□□□□□

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

आगरा (ग्रामीण) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

विज्ञापन माध्यमों में विज्ञापन की सुविधा :

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आच्छन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेण्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर की पर्चों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य सब 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर अक्षरों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

संस्थापक–योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डा. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर. एन. आई. रजि. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दासलाल शर्मा